सद्गुरवे नमः

संत कबीर की विवेकधारा से अनुप्राणित

पारख प्रकाश

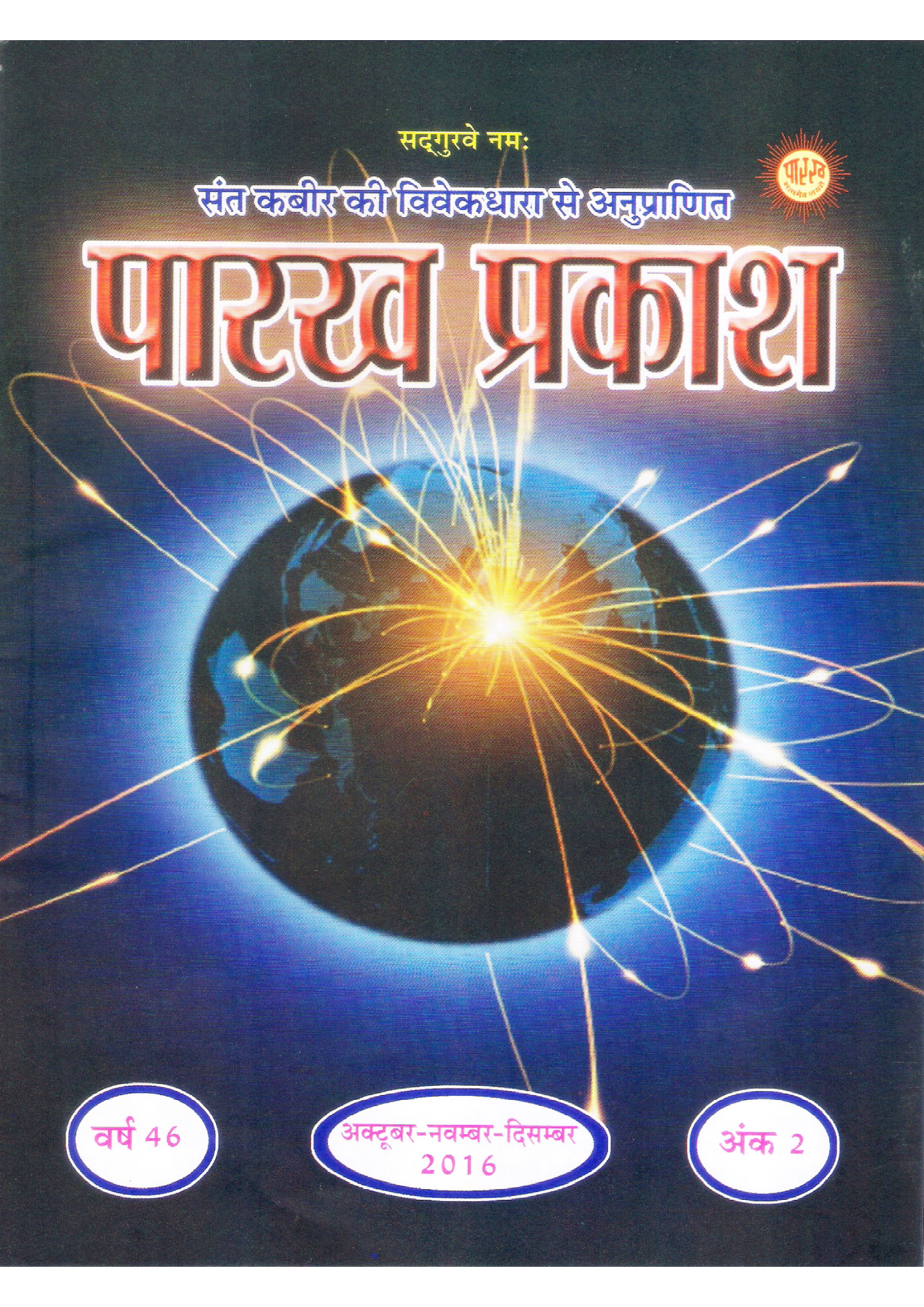

वर्ष 46

अक्टूबर-नवम्बर-दिसम्बर
2016

अंक 2

ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, एकता तथा मानव-धर्म-प्रेरक हिन्दी पत्रिका

प्रवर्तक
सद्गुरु श्री रामसूरत साहेब
श्री कबीर मन्दिर, बड़हरा
पोस्ट—मद्दोबाजार
जिला—गोंडा, उ०प्र०

आदि संपादक
सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब

संपादक
धर्मेन्द्र दास

आदि व्यवस्थापक
प्रेम प्रकाश

मुद्रक एवं प्रकाशक
गुरुभूषण दास

पारख प्रकाश इंटरनेट पर
www.kabirparakh.com

वार्षिक शुल्क—40.00
एक प्रति—12.50
आजीवन सदस्यता शुल्क
1000.00

विषय-सूची

कविता	लेखक	पृष्ठ
बहुरि नहिं आवना		1
ग़ज़ल	डॉ. अमृत सिंह	5
तुम्हारे खातिर है जज़्बाती	डॉ. राममिलन	16

स्तंभ

पारख प्रकाश / 2 व्यवहार वीथी / 13 परमार्थ पथ / 19
बीजक चिंतन / 27 शंका समाधान / 36

लेख

धीरे-धीरे जियो!	श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	6
आपका राशिफल	श्री रणजीत कबीरपंथी	9
साधना-पथ में सावधानी	भूपेन्द्र दास	17
क्रांतिकारी समाज सुधारक	श्री विजय चितौरी	21
वाणी की डगमगाहट	श्रीमती रजनीश	24
आत्मा सोई हो तो धर्म कैसे जागे?	सुश्री निर्मला भुराड़िया	29
ध्यान क्या है?	धर्मेन्द्र दास	31
पल भर में मिट सकता है आपका क्रोध	श्री भीकमचन्दजी प्रजापति	33
लोग आपकी क्यों नहीं सुनते?	डॉ. दीपक चोपड़ा	38
भंवरजाल बगुजाल है		44

कहानी

आशा	श्री भावसिंह हिरवानी	40

कबीर दर्शन

(नवां संस्करण)

सद्गुरु कबीर के जीवन, दर्शन, कर्तृत्व एवं व्यक्तित्व को समझने के लिए एक मानक ग्रंथ। इसके प्रथम अध्याय बीजक मंथन में कबीर साहेब की मौलिक वाणी 'बीजक' के आधार पर पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक तथा आध्यात्मिक विषयों का विशद विवेचन तथा अनेक शंकाओं का समाधान है। दूसरे अध्याय में पारखी संतों का इतिहास तथा ग्रंथ परिचय है। तीसरे अध्याय में पारख सिद्धांत का तात्त्विक एवं वैज्ञानिक चित्रण है। चौथे अध्याय में कबीर दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन है। पांचवें अध्याय में कबीर तथा कबीरपंथ से प्रभावित संतों का परिचय है। छ्ठै•ठ अध्याय में कबीरपंथ का इतिहास है तथा सातवें अध्याय उपसंहार में समन्वयात्मक रूप में सत्य तथा जीवन के अंतिम लक्ष्य का सारगर्भित चित्रण है। कबीर साहेब पर शोध करने वाले तथा सामान्य लोगों के लिए यह अनुपम ग्रंथ है। पृष्ठ 783, मूल्य 225 रु०।

कबीर संस्थान प्रकाशन

सद्‌गुरु श्री कबीर साहेब कृत
बीजक मूल (छोटा)
बीजक मूल (बड़ा)
कबीर भजनावली (भाग-1)
कबीर भजनावली (भाग-2)
कबीर साखी

~~*श्री निर्भय साहेब कृत*~~
न्यायनामा

सद्‌गुरु श्री रामसूरत साहेब कृत
विवेक प्रकाश मूल
बोधसार मूल
रहनि प्रबोधिनी मूल

श्री निर्बंध साहेब कृत
भजन प्रवेशिका

सद्‌गुरु श्री विशाल साहेब कृत
विशाल वचनामृत

सद्‌गुरु श्री अभिलाष साहेब कृत
बीजक टीका (अजिल्द)
बीजक व्याख्या : प्रथम खण्ड
बीजक व्याख्या : द्वितीय खण्ड
बीजक प्रवचन
कबीर बीजक शिक्षा
संत कबीर और उनके उपदेश
कहत कबीर
कबीर दर्शन
कबीर : जीवन और दर्शन
कबीर का सच्चा रास्ता
कबीर की उलटवांसियां
कबीर अमृतवाणी सटीक
कबीर : व्यक्तित्व और कर्तृत्व
कबीर पर शुक्ल और मेरी दृष्टि
कबीर कौन?
कबीर सन्देश
कबीर का प्रेम
कबीर साहेब
कबीर का पारख सिद्धांत
कबीर परिचय सटीक
पंचग्रंथी सटीक
विवेक प्रकाश सटीक
बोधसार सटीक
रहनि प्रबोधिनी सटीक
गुरुपारख बोध सटीक
मुक्तिद्वार सटीक
रामायण रहस्य
वेद क्या कहते हैं?
बुद्ध क्या कहते हैं ? (भाष्य)
मानसमणि
तुलसी पंचामृत
उपनिषद् सौरभ
योगदर्शन
गीतासार
वैदिक राष्ट्रीयता
श्री कृष्ण और गीता
मोक्ष शास्त्र
कल्याणपथ
ब्रह्मचर्य जीवन
बूंद बूंद अमृत
सब सुख तेरे पास
बसै आनंद अटारी
छाडहु मन विस्तारा
घूंघट के पट खोल
हंसा सुधि करु अपनो देश
उड़ि चलो हंसा अमरलोक को
समुद्र समाना बुंद में
मेरी और ह्वेन सां की डायरी
बंदे करि ले आप निबेरा
शाश्वत जीवन
सहज समाधि
ज्ञान चौंतीसा
सपने सोया मानवा
ढाई आखर
धर्म को डुबाने वाला कौन?
समझ की गति एक है
धर्म और मजहब
जीवन का सच्चा आनंद
प्रश्नोत्तरी
पत्रावली
संसार के महापुरुष
फुले और पेरियार
व्यवहार की कला
स्त्री बाल शिक्षा
आप किधर जा रहे हैं?
स्वर्ग और मोक्ष
ऐसी करनी कर चलो
ये भ्रम भूत सकल जग खाया
सरल शिक्षा
जगन्मीमांसा
बुद्धि विनोद
हृदय के गीत
वैराग्य संजीवनी
भजनावली
आदेश प्रभा
राम से कबीर
अनंत की ओर
कबीरपंथी जीवनचर्या
अहिंसा शुद्धाहार
हितोपदेश समाधान
मैं कौन हूं?
ब्राह्मण कौन?
नास्तिक कौन?
श्री कृष्ण कौन?
संत कौन?
हिन्दू कौन?
जीवन क्या है?
ध्यान क्या है?
योग क्या है?
पारख समाधि क्या है?
ईश्वर क्या है?
अद्वैत क्या है?
जागत नींद न कीजै
सरल बोध
श्री राम लक्ष्मण प्रश्नोत्तर शतक
सत्यनिष्ठा (सटीक)
कबीर अमृत वाणी (बड़ी)
बुद्ध क्या कहते हैं? (सटीक)
गृहस्थ धर्म
कबीर खड़ा बजार में
सत्य की खोज
स्वभाव का सुधार
भूला लोग कहैं घर मेरा
ऊंची घाटी राम की
शंकराचार्य क्या कहते हैं?
न्यायनामा (सटीक)
भवयान (सटीक)
विष्णु और वैष्णव कौन?
निर्मल सत्यज्ञान प्रभाकर
लाओत्ज़े क्या कहते हैं?
राम नाम भजु लागू तीर
आत्मसंयम ही राम भजन है
आत्मधन की परख
वैराग्य त्रिवेणी
अष्टावक्र गीता
सुख सागर भीतर है
मन की पीड़ा से मुक्ति
अमृत कहाँ है?
तेरा साहेब है घट भीतर
महाभारत मीमांसा
धनी धर्म साहेब के अमृत उपदेश

मराठी अनुवाद
बीजक टीका

ENGLISH TRANSLATION
Kabir Bijak (Commentary)
Eternal Life
Art of Human Behaviour
Who am I?
What is Life?
Kabir Amritvani
The Bijak of Kabir (In Verses)
Kabir Bijak
(Elucidation Sakhi Chapter)
Saint Kabir and his Teachings
Life and Philosophy of Kabir

गुजराती अनुवाद
बीजक मूल
बीजक व्याख्या : भाग-1
बीजक व्याख्या : भाग-2
कबीर अमृतवाणी
अढ़ी अक्षर प्रेम ना
व्यवहार नी कला
गुरु पारख बोध
स्त्री बाल शिक्षा
शाश्वत जीवन
ध्यान शुं छे?
हूं कोण छूं?
धर्म ने डुबारनार कोण?
जीवन शुं छे?
ईश्वर शुं छे?
कबीर सन्देश
श्री कृष्ण अने गीता
कबीर नो सांचो प्रेम
गुरुवंदना
संत कबीर अने अेमना उपदेश
कबीर : जीवन अने दर्शन

संत श्री धर्मेन्द्र साहेब कृत
कबीर के ज्वलंत रूप
सार सार को गहि रहे
सद्‌गुरु कबीर और पारख सिद्धांत
पूजिय विप्र शील गुण हीना
सबकी मांगे खैर
सुखी जीवन की कला
बूंद बूंद से घट भरे
सांचा शब्द कबीर का
सुखी जीवन का रहस्य
कबीर बीजक के रत्न

गुजराती अनुवाद
सुखी जीवन नी कला
सद्‌गुरु कबीर अने पारख सिद्धांत

संत श्री अशोक साहेब कृत
पानी में मीन पियासी
धनी कौन?
बोध कथाएं
ज्यों की त्यों धरि दीन्ही चदरिया

श्री भावसिंह हिरवानी कृत
कबीर (नाटक)
प्रेरक कहानियां
काया कल्प
समर्पण
बाल कहानियां
ना घर तेरा ना घर मेरा
जीवन का सच
कर्मयोगी कबीर (उपन्यास)

कबीर पारख संस्थान, संत कबीर मार्ग, प्रीतम नगर, इलाहाबाद-211011

सद्गुरवे नमः

साँचा सौदा कीजिये, अपने मन में जानि।
साँचे हीरा पाइये, झूठे मूलहु हानि बीजक, साखी

वर्ष] इलाहाबाद, क्वार, वि सं , अक्टूबर , सत्कबीराब्द [अंक

बहुरि नहिं आवना

सद्गुरु शरणे जाय के, तामस त्यागिये
भला बुरा कहि जाय, तो उठि नहिं लागिये टेक
उठि लागे सो रार, रार महा नीच है
जेहि घट उपजे क्रोध, सोई घट मीच है
जो कोई गाली देय, तो जवाब न दीजिये
गल अमृत तेरे पास, घोरि क्यों न पीजिये
अमृत फल लिये हाथ, रुचे नहिं रार को
श्वान को यही सुभाव, गहे पुनि हाड़ को
जाके जवन सुभाव, छुटे नहिं जीव सो
नीम न मीठा होय, सींचे गुड़ घीव सो
माला तेरे हाथ, कतरनी काँख में
आग बुझी मत जान, दबी है राख में
काह भये है बात, कहे तेरे पीव को
ऊपर के सब बाद, फले तेरे जीव को
कहहिं कबीर विचार, समुझ मन भावना
हंस गये सतलोक, बहुरि नहिं आवना

पारख प्रकाश

भजन भेद है न्यारा

सद्गुरु कबीर ने अपने अनेक पदों में कहा है— 'भजन बिना बावरे तूने हीरा सा जनम गंवायो, बीत गये दिन भजन बिना रे, दीवाने मन भजन बिना दुख पइहौ, आदि। इनका अर्थ स्पष्ट है कि ऐ पगले! भजन के बिना तुमने हीरा सरीखे बहुमूल्य जीवन को व्यर्थ में ही खो दिया, भजन के बिना तुम्हारे सुनहरे अवसर बीत गये, ऐ पगले मन! यह याद रखो कि भजन के बिना तुम केवल दुख पाओगे।

कबीर साहेब ने या अन्य संतों ने भजन को इतना महत्त्व क्यों दिया, जबकि मानव मात्र की प्राथमिक आवश्यकता भोजन है। भजन के बिना तो मनुष्य जीवित रह सकता है, किन्तु भोजन के बिना जीवित नहीं रह सकता, तब भोजन की अपेक्षा भजन पर इतना जोर क्यों? जबकि कबीर साहेब स्वयं कहते हैं—

भूखे भजन न होय गोपाला। ले ले अपनी कंठी माला
ना कुछ देखा भाव भजन में, ना कुछ देखा पोथी में।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, जो देखा सो रोटी में

यह निश्चित है कि भोजन मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकता है और भोजन के बिना शरीर की भूख दूर नहीं हो सकती, किन्तु यह भी निश्चित है कि मनुष्य चाहे कैसा और कितना भी भोजन क्यों न कर ले, उसे कितना भी भौतिक वैभव-ऐश्वर्य क्यों न मिल जाये उससे उसके मन की भूख, पीड़ा दूर नहीं हो सकती। भौतिक समृद्धि की आवश्यकता है, इसे कोई भी इंकार नहीं कर सकता, किन्तु भौतिक समृद्धि मनुष्य को मानसिक संतोष, तृप्ति और शांति नहीं दे सकती। मानसिक तृप्ति और शांति तो भजन से ही मिलेगी।

आज सर्वत्र भौतिक विकास हुआ है, सुविधाएं बढ़ी हैं, विज्ञान ने मनोरंजन के अनेक साधन सुलभ करा दिया है, किन्तु इन सबके बावजूद आज मनुष्य पहले की अपेक्षा ज्यादा अशांत, तनावग्रस्त एवं उलझा हुआ है, आत्महत्या करने वालों की संख्या बढ़ी है। भौतिक विकास मनुष्य की भौतिक समस्याओं का ही समाधान कर सकता है, मानसिक समस्याओं का नहीं। मानसिक समस्याओं का समाधान भजन से ही हो सकता है। भजन के अभाव में धनी-गरीब, शिक्षित-अशिक्षित सब मानसिक दुखों से पीड़ित एवं उलझे हुए हैं। भजन के अभाव में मनुष्य आध्यात्मिक विकास तो कर ही नहीं पा रहा है उसका पारिवारिक-सामाजिक जीवन भी तनावपूर्ण, कलहपूर्ण एवं दुखपूर्ण बना हुआ है। इसीलिए संतों ने भजन पर जोर दिया और कहा कि ऐ लोगो! भजन के बिना तुम्हें केवल दुखों में जलना पड़ेगा।

यह कहा जा सकता है कि भजन भी मनुष्य को मानसिक दुखों से छुटकारा नहीं दिला सकता। यदि भजन से मानसिक दुखों की निवृत्ति होती, मानसिक तृप्ति, शांति मिलती तो आज मनुष्य मानसिक रूप से तनावग्रस्त, दुखी और उलझा हुआ क्यों होता, क्योंकि आज तो पहले की अपेक्षा पूजा-पाठ, कथा-कीर्तन, जागरण तथा अनेक प्रकार के धार्मिक आयोजन ज्यादा होने लगे हैं तथा धार्मिक स्थलों में ज्यादा भीड़ होने लगी है।

इस सम्बन्ध में यह समझना चाहिए कि पूजा-पाठ, नाम-मंत्र-जप, कथा-कीर्तन, जागरण, धार्मिक आयोजन भजन नहीं हैं किन्तु एक प्रकार के मनोरंजन के साधन एवं बालखेल हैं। भजन के बहुत ही स्थूल रूप हैं। इनसे थोड़ी देर के लिए मन में सात्त्विक भावना एवं एकाग्रता आती है, परन्तु इनसे पूर्ण मानसिक तृप्ति-शांति नहीं मिल सकती।

कुछ लोगों के बीच बैठकर दूसरों की निन्दा-चुगली करने, प्रपंचपूर्ण कर्म करने तथा खाली बैठे रहने की अपेक्षा किसी प्रकार का पूजा-पाठ, नामजप, कथा-कीर्तन करना अच्छा है, परन्तु इनको ही भजन मानकर इनमें ही रुक जाने से मन को पूरा संतोष नहीं होगा और न मानसिक दुखों से छुटकारा होगा। भजन तो वह है जो हमें मानसिक दुखों से छुटकारा दिलाये, जिससे मन को पूर्ण तृप्ति-शांति मिले।

एक बात और, धर्म के क्षेत्र में जितने भी मत-मजहब, पंथ, समाज, सम्प्रदाय हैं सबके अपने पूजा-पाठ, नाम जप, हवन-तर्पण, इबादत के अलग-अलग ढंग और नियम हैं। इनमें सदैव विविधता रही है और रहेगी। इस विविधता को कभी मिटाया नहीं जा सकता। इनमें न कोई छोटा है और न कोई बड़ा। जो आदमी जिस मत का मानने वाला है वह अपने मत के पूजा-पाठ के नियमों का पालन करे और अन्य मतों के पूजा-पाठ के नियमों के प्रति आदरभाव रखे। यदि एक धार्मिक कहलाने वाला आदमी ऐसा नहीं कर सकता, बल्कि अपने से भिन्न मत के आदमियों के प्रति, उनके पूजा-पाठ के नियमों के प्रति दुर्भावना, कटुता, द्वेष रखता है तो कैसे कहा जाये कि वह धार्मिक आदमी है। पूजा का तो अर्थ होता है मन का सरल, कोमल एवं विनम्र होना और सरल, कोमल, विनम्र मन में किसी के लिए दुर्भाव, कटुता, द्वेष कैसे आ सकते हैं। मन के कटुता, द्वेष, ईर्ष्या, घृणा, वैर-विरोध, वैमनस्य आदि का दूर होकर मन का सरल, विनम्र, कोमल होना, सबके लिए प्रेम-करुणा, कल्याण कामना होना—यही तो पूजा का फल है और यही भजन करना है।

भजन कैसे करें और कब करें? इसकी शुरुआत कैसे करें? भजन के लिए कोई एक खास समय निर्धारित नहीं किया जा सकता। जब समय मिले तब भजन किया जा सकता है, परन्तु सुबह-शाम का समय ज्यादा अच्छा होता है। भजन कैसे करें यह समझने के पहले यह समझ लें कि भजन क्या है। यह पहले कहा जा चुका है कि किसी भी प्रकार का कर्मकांड भजन नहीं है। यदि कर्मकांडों को भजन माना भी जाये तो वे भजन के बहुत स्थूल और बाहरी रूप हैं, खिलौने तथा मन बहलाने के साधन हैं। असली भजन है आत्मशोधन और आत्मानुसंधान।

पहले हम आत्मशोधन को लें। इसके दो रूप हैं एक बाहरी और दूसरा भीतरी, जिसे हम व्यावहारिक और धार्मिक भी कह सकते हैं। पहले व्यावहारिक रूप को लें। इसके लिए सुबह सोकर उठने के बाद और रात में सोने के पहले पांच से दस मिनट का समय दें। सुबह नींद खुलने के बाद बिस्तर पर उठकर बैठ जायें और आंख बंद कर यह दृढ़ संकल्प करें कि आज मैं किसी के लिए भी अपशब्द का प्रयोग नहीं करूंगा, किसी की निन्दा-चुगली-बुराई नहीं करूंगा, किसी के लिए गलत नहीं सोचूंगा, कोई ऐसा काम नहीं करूंगा जिससे दूसरों को शारीरिक-मानसिक तकलीफ पहुंचे, किसी प्रकार की आर्थिक हानि हो, यदि कोई मुझे किसी प्रकार तकलीफ देता है, मेरा आर्थिक नुकसान करता है, मुझे गाली देता है या मेरी निन्दा-बुराई करता है तो मैं उसके लिए क्रोध नहीं करूंगा, उसके लिए न अहित का काम करूंगा न अहित चिंतन करूंगा बल्कि उसके लिए हितचिंतन ही करूंगा और यदि संभव हुआ तो उसके हित का ही काम करूंगा।

सुबह इस प्रकार संकल्प के साथ दिनभर कार्य व्यवहार करने के पश्चात जब रात में सोने के लिए जायें तब बिस्तर पर बैठकर पूरे दिन के कार्य-व्यवहार का सिंहावलोकन करें कि कहां-कहां मुझसे भूल हुई है। जो-जो गलत कार्य-व्यवहार हुए हैं उनके लिए ग्लानि-पश्चाताप करें और यह संकल्प करें कि कल ऐसी भूल नहीं करूंगा। यदि किसी के लिए अपशब्द का प्रयोग हुआ है या किसी के साथ गलत व्यवहार हुआ है तो उसका नाम लेकर मन ही मन उससे क्षमा मांग लें। यदि प्रत्यक्ष रूप से क्षमा मांग लिया जाये तो और अच्छा है, किन्तु यदि प्रत्यक्ष रूप से क्षमा मांगने में अहंकार आड़े आता है या व्यावहारिक कठिनाई है तो मन ही मन तो क्षमा मांगा ही जा सकता है। यदि मन से भी क्षमा नहीं मांगा जा सकता है तो समझना चाहिए कि मन-हृदय अभी बहुत कठोर बना हुआ है और ऐसा कठोर मन-हृदय रखकर कभी सच्ची मानसिक शांति-प्रसन्नता का अनुभव नहीं किया जा सकता, क्योंकि अभी भजन जीवन में उतर नहीं रहा है। इसके अतिरिक्त जिन लोगों ने आपके साथ गलत कार्य-व्यवहार किया है, अपशब्द का प्रयोग किया है, आपका काम बिगाड़ा है या आर्थिक-सामाजिक नुकसान किया है उनको मन से

पूर्णतः क्षमा कर दें, उनके लिए मन में किसी प्रकार का द्वेष-वैरभाव न रखकर उनके लिए हितकामना करें। उन्हें सामने प्रत्यक्ष रूप से क्षमा तो किया ही नहीं यदि अकेले में मन से भी क्षमा नहीं किया जा रहा है, बल्कि उनके प्रति कटुता-द्वेष-वैरभाव है तो समझना चाहिए अभी मन-हृदय बहुत क्रूर बना हुआ है, और ऐसे क्रूर मन-हृदय से भजन नहीं हो सकता।

इस प्रकार प्रतिदिन सुबह गलत कार्य-व्यवहार न करने के लिए दृढ़ संकल्प और रात में दिन के गलत कार्य-व्यवहार के लिए ग्लानि, पश्चाचाप, जिन लोगों को अपने द्वारा किसी प्रकार का दुख-नुकसान हुआ है उनसे क्षमा याचना और जिन लोगों द्वारा हमें दुख-नुकसान हुआ है उन्हें क्षमा प्रदान करते रहना ही भजन का व्यावहारिक रूप है। ऐसा करके ही हम अपने को गलत कार्य-व्यवहार से बचा कर सद्गुण-सदाचार के पथ में चल सकते हैं और अपने मन-हृदय को सरल, कोमल, विनम्र बनाये रख सकते हैं।

आत्मशोधन का भीतरी रूप है रोज अपने गुण-दोषों की परख करके गुणों-सद्गुणों को बढ़ाने के लिए तथा दोषों-दुर्गुणों को घटाने के लिए प्रयत्नशील रहना। जैसे कुशल व्यापारी प्रतिदिन शाम को दुकान बंद करने के बाद दिनभर की खरीद-बिक्री का हिसाब लगाता है वैसे ही हर शांति इच्छुक का कर्तव्य है कि वह प्रतिदिन अकेले बैठकर अपने गुण-दोषों का हिसाब लगाये। यदि बहिर्मुखता घटकर अंतर्मुखता बढ़ रही है, परवशता घटकर आत्मस्ववशता बढ़ रही है, विषयलोलुपता घटकर आत्मसंयम बढ़ रहा है, विषयचिंतन घटकर आत्मचिंतन बढ़ रहा है, मनोविकार घटकर सद्गुण बढ़ रहे हैं, मन उत्तरोत्तर निर्मल-निर्विकार होता जा रहा है तो भजन हो रहा है। यदि इसके विपरीत हो रहा है तो भजन नहीं हो रहा है।

कितने धार्मिक, भक्त, पुजारी कहलाने वाले पूजा-पाठ के नाम पर टंट-घंट में ही उलझे रह जाते हैं। उन्हें ही वह भजन करना समझते हैं। वास्तविक भजन आत्मशोधन करना, मन की निरख-परख करते रहना है, यह उनकी समझ में आता ही नहीं है। एक संत एक जगह आंखें बंदकर ध्यान में बैठे हुए थे। एक व्यक्ति ने उन्हें चुपचाप बैठे देखकर कहा—महाराज! चुपचाप क्यों बैठे हैं? भजन क्यों नहीं करते? उनकी बात सुनकर संत ने कहा—मुझे तो हर समय सूतक लगा रहता है, मैं भजन कब करूं? संत की बात सुनकर उस व्यक्ति ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—महाराज, किसी आदमी को सूतक तो तब लगता है जब उसके परिवार में किसी का जन्म या किसी की मौत होती है। आप तो साधु हैं। आपका परिवार कहां है जिसमें किसी का जन्म या मृत्यु होने से आपको सूतक लगा हुआ है। संत ने कहा—मेरे परिवार को आप जानते कहां हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, राग, द्वेष, वैर, वैमनस्य, ईर्ष्या, घृणा आदि मेरे परिवार के सदस्य हैं, इनमें से रोज किसी न किसी की मृत्यु होती रहती है, दूसरी तरफ दया, क्षमा, करुणा, प्रेम, सत्य, विवेक, विचार, धैर्य, शम, संतोष, भक्ति, विनम्रता आदि में से किसी न किसी का जन्म होता रहता है। इसके विपरीत भी होता रहता है। इस प्रकार मुझे हर समय सूतक लगा रहता है, तब भजन कब करूं। संत की बात सुनकर उस व्यक्ति ने कहा—महाराज! समझ गया। जो इस प्रकार निरंतर आत्मशोधन में लगा रहता है, भजन के असली मर्म को वही समझता है और वही सच्चा भजन कर रहा है।

हर मनुष्य के मन में दैवी और आसुरी दोनों संपदाएं हैं। सद्गुण पक्ष दैवी संपदा है और दुर्गुण पक्ष आसुरी संपदा है। मनुष्य जिधर अपनी सत्ता देगा उसी का विकास होगा। परन्तु यह समझना होगा कि आसुरी संपदा का विकास दुख, अशांति, पीड़ा और बंधन का कारण बनेगा और दैवी संपदा का विकास सुख, शान्ति, प्रसन्नता और कल्याण का। जिस साधन से आसुरी संपदा घटे और मिटे तथा दैवी संपदा बढ़े, विकसित हो उसी का नाम भजन करना है।

एक संत ने कितना बढ़िया कहा है—

मन की तरंग मार लो, बस हो गया भजन।

आदत बुरी सुधार लो, बस हो गया भजन

मनुष्य दुखी, अशांत, तनावग्रस्त है तो केवल अपने गलत कर्म और गलत आदत के कारण। गलत कर्म

और आदत वह है जिससे मन में चंचलता और उत्तेजना बढ़े तथा परिणाम में स्वयं को तथा दूसरों को दुख-पीड़ा मिले। इस गलत कर्म और आदत को छोड़कर अच्छे कर्म करना और अच्छी आदत बनाना जिससे मन की चंचलता-उत्तेजना घटकर मन में शांति, प्रसन्नता आये, एकाग्रता बढ़े और दूसरों को भी सुख-शांति मिले वही काम भजन करना है।

अन्तिम भजन है आत्मानुसंधान, स्वस्वरूप का अनुसंधान, खोज करना। हर आदमी दुखी है और वह दुख से छुटकारा पाना चाहता है। उसे सोचना चाहिए कि मैं दुःखी हूं तो मैं कौन हूं जो दुख का अनुभव कर रहा हूं। क्या मैं शरीर हूं या शरीर का अंग विशेष हूं? यदि मैं शरीर होता तो एक दिन ऐसा आता है जब शरीर निष्क्रिय निष्चेष्ट होकर पड़ा रहता है और वह न दुख का अनुभव करता है और न सुख का। इससे यह सिद्ध होता है कि मैं न शरीर हूं और न शरीर का कोई अंग विशेष या शरीर की अवस्था विशेष हूं।

यदि मैं जड़ तत्त्वों के संयोग से उत्पन्न उनका कार्य हूं। तो किसी भी जड़ तत्त्व में, चाहे उसका नाम कुछ भी ले लें, चेतना-ज्ञान गुण नहीं है तब उनके संयोग से उत्पन्न कार्य में चेतना-ज्ञान गुण कैसे आयेगा, क्योंकि यह नियम है कि जो गुण-धर्म कारण में होगा वही गुण-धर्म उसके कार्य में आयेगा, उससे अलग नहीं। और प्रत्यक्ष ही मैं चेतना-ज्ञान गुण युक्त हूं। अतः मैं न जड़ तत्त्व हो सकता हूं और न उनका कार्य, किन्तु मैं जड़ तत्त्वों से सर्वथा पृथक उनका ज्ञाता तथा उनके गुण-धर्मों का विश्लेषण करने वाला हूं।

वस्तुतः मैं अंश-अंशी, कार्य-कारण, व्याप्य-व्यापक भाव से रहित शुद्ध-बुद्ध, अजर-अमर अविनाशी चेतन हूं। अनादि अविद्या वश मैं जन्म-मरण चक्र में पड़ा भटक रहा हूं। देहाभिमान, देहासक्ति, विषयासक्ति का त्यागकर मैं जन्म-मरण चक्र से छूटकर अपने शुद्ध स्वरूप में स्थित होकर सारे दुखों से सदैव के लिए छुटकारा पा सकता हूं। इस प्रकार अपने शुद्ध चेतन स्वरूप का बोध प्राप्त कर मन को अंतर्मुख कर आत्मलीन कर लेना ही भजन है।

हर मनुष्य को हर समय मैं का बोध होता रहता है। कभी किसी को यह नहीं लगता कि मैं नहीं हूं। मैं को केन्द्र में रखकर ही तो वह सब कुछ करता है और मैं के लिए ही सब कुछ पाना चाहता है। मैं कहने वाला ही तो सबका ज्ञाता, द्रष्टा, मंता, बोद्धा, भोक्ता है। तो वह मैं कौन है? वह मैं हर व्यक्ति का अपना आत्म अस्तित्व है। उस अपने आत्म अस्तित्व का अनुसंधान करना और उसका निर्भ्रान्त बोध प्राप्त कर उसमें स्थित हो जाना ही भजन है।

स्वामी शंकराचार्य विवेक चूड़ामणि में कहते हैं—

अस्ति कश्चित् स्वयं नित्यमहंप्रत्ययलम्बनः।

अवस्थात्रयसाक्षी सन्पञ्चकोश विलक्षणः

अर्थात मैं बोध का आधार कोई स्वयं नित्य सत्ता है, जो तीनों अवस्थाओं का साक्षी एवं पंच कोशों से विलक्षण है।

मैं बोध का आधार जो स्वयं नित्य सत्ता है वह और कोई नहीं, हर व्यक्ति का अपना आत्म अस्तित्व है। अपने मन को सब तरफ से समेटकर आत्मलीन, आत्मस्थित कर देना ही सच्चा भजन है।

ग़ज़ल

रचयिता—डॉ. अमृत सिंह

काली कमाई देश से, बाहर न गई होती,
भावना गर देशहित, सच्ची रही होती।

होते न दंगे देश में, धरम के नाम पर,
आस्था गर धरम की, सच्ची रही होती।

होती न हावी, हैवानियत इंसान पर,
इंसानियत गर जरा भी, सच्ची रही होती।

न फेंकती कोई मां, नवजात कूड़े में,
ममता अगर उर में, सच्ची रही होती।

न मचती होड़, भ्रष्टाचार की इतनी,
नीयत गर इंसान की, सच्ची रही होती।

न फेंकता जूता, बेखौफ कोई मंच पर,
सद्भावना मन में गर, सच्ची रही होती।

धीरे-धीरे जियो!

लेखक—श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

हमेशा जिस बरतन में मेरे स्नान के लिए पानी रखा जाता है, वह एक कलई की कूंड़ है और उसमें कोई तीन बाल्टी पानी आता है। उस दिन स्नान के समय एक अतिथि आ गये, तो गरम पानी का बंटवारा हो गया। अब कूंड़ मिली उन्हें और अलमुनियम का बड़ा भिगौना मुझे—यह अपने में बड़ा होकर भी इतना छोटा कि एक बाल्टी में भरपूर!

भिगौना देखकर मुझे लगा कि आज पानी कम है और बिना सोचे भी इसका अर्थ हुआ—आज स्नान में वैसा आनन्द न आयेगा। फिर भी स्नान तो करना ही था, करने लगा, पर स्नान आज कुछ और तरह का लग रहा है। कैसा लग रहा है, सो कुछ स्पष्ट नहीं, पर लग रहा है कुछ और तरह का ही। ज़रा सचेष्ट होकर सोचता हूं, तो यह लगना अच्छा है, कुछ बुरा नहीं।

यहां मेरा मन जाग-सा गया है। यह जाग एक प्रश्न बन रही है—जब पानी आज और दिन से कम है, तो स्नान अधूरा है। अधूरा होने का अर्थ है कि उसमें आनन्द की कमी है, पर यहां उलटी बात है कि आनन्द अधिक है, तो यह क्यों?

प्रश्न उत्तर चाहता है, पर उत्तर तैयार तो है नहीं, उसे तैयार होना है। तैयारी प्रयोग चाहती है, काम मांगती है। इधर-उधर ध्यान गया, तो देखा कि रोज़ बड़ी कूंड़ के साथ स्नान करने को एक लोटा रहता था, संयोगवश आज गिलास ही है। लोटा शायद कूंड़ के साथ ही चला गया है। लोटा एक बार में सेर-भर से ज़्यादा पानी लेता है, तो यह गिलास पाव-भर ही और यों लोटे से नहाने में तीन बाल्टियों का पानी जितना समय लेता है, आज एक बाल्टी पानी उससे ज़्यादा समय ले रहा है।

मैं सोच रहा हूं यह देर तक नहाना ही आज का आनन्द है।

प्रश्न का उत्तर तो पूरा हो गया, पर प्रश्न भी तो एक पुरुष है, जो अकसर अपने साथ अपना कुटुम्ब रखता है। मुझे लग रहा है कि मन के भीतर एक नया प्रश्न उभरता आ रहा है। यह लो, वह आ गया ऊपर की सतह पर—स्नान की तरह जीवन की भी स्थिति नहीं है क्या, जो जल्दी-जल्दी जीने की अपेक्षा धीरे-धीरे जीने में अधिक आनन्द देता है?

स्नान की बात जीवन में उतरी, तो गहरी हो गयी और मैं जाने विचारों के पाताल में कहां-कहां घूम आया। इस घूम-घाम में ज्ञान का यह सूत्र हाथ लगा : "सदा अंजलि को छोटी रखो; भले ही प्रश्न जीवन का हो या जीवन के किसी अंग का हो, सवासेरी लोटे से स्नान करने और गिलास से स्नान करने में यही तो अन्तर है कि पहले में अंजलि बड़ी है, दूसरे में छोटी!"

तभी मुझे याद आ गये गौन साहब। वे मेरी ही जन्मभूमि के एक युवक थे। प्लेग में पिता की मृत्यु हो गयी, तो सम्पदा हाथ आयी। आंखें कमज़ोर थीं, सो चौंधिया गयीं और खुल खेले। अब वे पूरे ज़ोरों में थे। इठलाकर चलते, इतराकर बोलते। हरेक बात के अन्त में कहते : गो-ओन। बस नाम ही पड़ गया गौन साहब!

गौन साहब की चारों तरफ़ चर्चा थी। होली में सांग खिलवाया, तो समा बंध गया। हज़ारों रुपये सांग-मण्डली, शराब और दावत में उड़ गये : "वाह साहब, आदमी तो गौन साहब हैं कि रुपये को कुछ समझते ही नहीं!" जो मिलता, गौन साहब के जस गाता और जो जस गाता, कुछ पाता। मुफ़्त के पीने वाले कहां सुलभ नहीं? गौन साहब हमेशा दस-बीस में घिरे रहते!

चैत के मेले में गौन साहब का डेरा सबको मात कर गया। फुलवाड़ी भी रही, आतिशबाजी भी और नाच-मुजरा भी। जो आया, खाकर गया, जो बैठा, पीकर ही उठा और देखने वालों के तो ठट्ट लग गये। अब गौन साहब की चर्चा गली-गली से घर-घर पहुंच गयी!

दो साल यही हाल रहा कि होली आयी, तो गौन साहब की और दीवाली आयी तो गौन साहब की। शहर के सब चमकते सितारे फीके पड़ गये, कुछ ऐसे चमके गौन साहब!!

बिना कमाये तो कारूं का ख़ज़ाना भी ख़ाली हो जाता है। गौन साहब की तिज़ोरी भी अब आज्ञा-पालन में हिचिर-मिचिर करने लगी, पर गौन साहब के तो हाथ

और दिमाग़ दोनों ही खुले हुए थे। रुपये की कमी आयी, तो धीरे-धीरे ज़मीन साफ़ हुई, बाग गया और हवेली भी गिरवी होकर, अन्त में कुटुम्बियों के हाथ बिक गयी। इन्हीं आंखों, उन्हें तीसरे वर्ष मैंने फटेहालों भटकते देखा और तब उनका कोई दोस्त न था!!!

इस सबका सार संक्षेप में वही तो है कि गौन साहब जल्दी-जल्दी जिये! ध्यान भी कहां से कहां चला जाता है। कहां गौन साहब और कहां उस तीर्थ के भिखारी! उस दिन वर्षगांठ थी मेरी। पत्नी ने कुछ परांवठे बना दिये कि मैं भूखों को खिला आऊं। छोटी-सी छबिया में लेकर गया, तो वहां उस समय तीन-चार भिखारी थे। उन्हें मैंने कई-कई परांवठे दिये कि इतने में पांच-सात भिखारी और आ गये। हाथ सकोड़ा और उन्हें एक-एक परांवठा दिया, पर तब तक और आठ-दस आ गये। उन्हें आधा-आधा दिया कि परांवठे समाप्त, पर कई भिखारी अब भी मेरे सामने, जो भूखी आंतों और प्यासी आंखों मुझे देख रहे थे!

बात का रूप कुछ हो, पर है वही बात कि अंजलि बड़ी थी। जो शक्ति थी, जो जीवन था, वह जल्दी समाप्त हो गया और जिन्हें मैं कुछ न कुछ दे सकता था, जो सुख भोग सकता था, उन्हें न दे पाया, वह सुख न भोग सका!

महात्मा टॉल्स्टॉय की एक कहानी है कि राजा को कहीं से एक अनाज का दाना मिला। यह होगा कोई पाव-भर का, पर आकृति और बनावट उसकी गेहूं-जैसी! आख़िर यह क्या है?

राजा ने आदेश दिया कि राज्य में जो सबसे बूढ़ा हो उसे बुलाया जाये, वह शायद इस बारे में कुछ बता सकेगा कि यह क्या है? राजा के प्यादे चारों ओर दौड़ गये और एक दिन वे एक आदमी को लिये आये। आंखें उसकी लगभग ज्योतिहीन और पैरों में खड़े रहने की शक्ति नहीं, इसलिए राजा के प्यादे उसे कन्धों पर उठाये हुए।

अनाज के दाने को देखकर बूढ़े ने कहा, "यह गेहूं है, पर इसके बारे में मैं अधिक नहीं जानता। हां, मेरे पिता इस बारे में आपको बता सकते हैं, वे अभी जीवित हैं।"

प्यादे फिर दौड़ गये और इस बार वे जिसे लाये उसकी आंखों में रोशनी थी, पैर में ताकत; प्यादे उसे सिर्फ़ सहारा दिये, लिये आ रहे थे!

अनाज के उस दाने को देखकर तुरन्त बूढ़े ने कहा : "हां-हां, यह गेहूं है। अपने बचपन में हमने इसे खूब खाया है, पर मैं इस बारे में और कुछ नहीं जानता। हां, मेरे पिता बहुत कुछ बता सकते हैं। सौभाग्य से वे अभी जीवित हैं।"

प्यादे फिर दौड़ गये और इस बार वे जिसे लाये, उसकी आंखों में रोशनी थी, कन्धों में उभार था। पैरों में ठुकाव था और वह बिना किसी का सहारा लिये धीरे-धीरे चला आ रहा था!

उसने राजा से कहा : "हां जी, यह तो गेहूं है, हमने बोया है, काटा है, गाहा है, खाया है!"

राजा ने पूछा : "तब यह क्या भाव बिकता था महाशय?"

हंसकर बूढ़े ने कहा : "बिकना-बिकाना हम नहीं जानते, पर जितना चाहें, मिल जाता था। जिसके पास गेहूं होता, वह देता औ मिठाई या कपास, जो उसके पास न होती, ले लेता!"

कहानी तो समाप्त हो गयी और कहानी तो फिर कहानी ही है, पर मैं अब भी उसी दरबार में बैठा उन तीनों बूढ़ों को देख रहा हूं—बेटे से बाप और बाप से बाबा अधिक स्वस्थ है, यानी बेटे के पास पचहत्तर वर्ष की आयु में जितना जीवन-धन शेष है, बाप के पास सौ वर्ष की आयु में उससे अधिक और बाबा के पास एक सौ पचीस वर्ष की आयु में उससे भी अधिक शेष है।

क्या अर्थ हुआ इसका? अर्थ क्या और फलितार्थ क्या; वही एक बात देख-भालकर ख़र्च करने की, अंजलि छोटी रखने की बात और धीरे-धीरे जीने की बात।

काग़ज़ दियासलाई के छूते ही जल उठता है और भभककर बुझ जाता है, पर कोयला धीरे-धीरे आग पकड़ता है और धीरे-धीरे ही जलता है। जलना ही उसका जीवन है।

मनोवैज्ञानिक मानते हैं और अनुभव उसका समर्थन करता है कि किसी बालक का अपनी छोटी आयु में अधिक बुद्धिमान होना भयावह है। ऐसे बालक आगे

चलकर डल हो जाते हैं या पागल। इसके विपरीत संसार के अनेक महापुरुष अपने बालकपन में बहुत ही धीमे थे।

अपनी स्मृतियों के मण्डप में आ विराजे अपने पिता के मैं दर्शन कर रहा हूं इस समय वे सत्तर वर्ष की आयु में भी पूर्ण स्वस्थ थे। उनमें इतना जीवन था कि देखकर ही जीवन मिलता था।

पिता जी, आप बुढ़ापे में भी इतने स्वस्थ हैं, इसका रहस्य क्या है? एक दिन यह मैंने उनसे पूछा, तो बोले : तीन मुख्य कारण हैं इसके—

. मैं सदा ब्रह्मवेला में नियमित रूप से जागता हूं और स्नान, भोजन, विश्राम और भ्रमण आदि में नियमित रहता हूं।

. मैं सदा आदमी रहता हूं, भगवान् कभी नहीं बनता। तुम्हें सौ रुपये मिल गये, तो खुश और खो गये तो गुम! मैं मानता हूं, सब काम ठाकुर जी की इच्छा से हो रहा है। आया भी उनका, गया भी उनका, सुख भी उनका, दुःख भी उनका।

. मैं हमेशा बच्चों में खेलता हूं। ये मुझे नया जीवन और फुरती देते हैं। हंसकर बोले : मेरे बालमित्रों में और बुढ़ापे में युद्ध हो रहा है। वह मुझे जितना थकाता है, ये मुझे उतनी ही शक्ति दे देते हैं। किसी दिन तो बुढ़ापा जीतेगा ही, पर ख़ैर अभी तो बेचारा पिट रहा है!

लोटे और गिलास के ऊहापोह में पड़ा, आज मैं सोच रहा हूं कि मेरे पिता जी ने उस दिन धीरे-धीरे जीने का व्याकरण ही तो मुझे पढ़ाया था।

मेरा जीवन ही उनका जीवन है—यानी व्यक्ति का जीवन ही राष्ट्र के जीवन का आधार है। यों व्यक्ति की तरह राष्ट्र भी धीरे-धीरे ही जिये, तो श्रेयस्कर है, पर सभ्यता और विज्ञान दोनों ही उसे आज तेज़ी दे रहे हैं, जो सुविधा हमें भले ही दें, सुख कहां दे पाते हैं!

भारतीय जीवन धीरे-धीरे जीने का जीवन है। उसमें उद्वेग और आवेग नहीं है, सन्तोष और शान्ति ही उसके मूल आधार हैं।

सन्तोष और निराशा एक नहीं है। जो हमें मिला है, धैर्य के साथ हम उसका उपभोग करें और जो हमें मिलना है उसके लिए धैर्य के साथ उद्योग भी, पर इस उपभोग और उद्योग में हाय-हाय न हो, अशान्ति न हो, क्योंकि 'यदस्मदीयं न हि तत्परेषाम्' जो हमारा है, हमें मिलना है, वह किसी और का नहीं हो सकता!

क्या हमें मिलना है और क्या पाने का हम उद्योग करें, इसकी भी एक मर्यादा है। यह मर्यादा ही भारतीय जीवन-दर्शन है। गांधी जी ने इस जीवन-दर्शन को पूरी तरह समझा था और उनका चरखा उनकी दृष्टि में इसके पुनरुज्जीवन का ही प्रतीक था!

संक्षेप में जीवन का आदर्श सांचे में ढला पुरज़ा नहीं, वृक्ष पर खिला पुष्प है। वह बटन दबाते ही खिंच जाने वाला फ़ोटो नहीं, ब्रश और उंगलियों की कारीगरी से धीरे-धीरे बनने वाला चित्र है।

हम जीवन में दौड़ लगाते हैं। दौड़ना बुरा नहीं है। दौड़ने की शक्ति हममें हो, समय पर दौड़ सकें, यह आवश्यक है, पर दौड़ना जीवन का कोई साधारण नियम नहीं है—शयनकक्ष से दौड़कर रसोईघर में घुसना तो एक पागलपन ही है!

धीरे-धीरे जीने का अर्थ रुकना नहीं है। रुकना मृत्यु है। यह जीवन में पाप है; क्योंकि यह जीवन नहीं, जड़ता है। 'धीरे-धीरे जियो' का अर्थ इतना ही तो है कि जीवन की शक्ति को संभालकर ख़र्च करो।

जीवन के इस सत्य को एक बार पहले भी मैंने अनुभव किया था। उस दिन मैं शौचालय गया, तो विचारों में डूबा हुआ था। जब तामलोट के बहुत-से पानी का उपयोग कर चुका, तो मुझे अनुभव हुआ कि अभी मैं पूरी तरह नहीं निपट पाया। अब मेरे सामने प्रश्न था कि यह पानी तो कम है, क्या करूं? सोचकर मैंने निश्चय किया कि जितना पानी शेष है, उसे ही हाथ थामकर बरतूंगा।

अन्त में मैंने यही किया और मुझे आश्चर्य हुआ कि जिस स्वच्छता के लिए पूरा बरतन-भरा पानी अभीष्ट था, वह थोड़े पानी में भी हो गयी। तभी मैंने सोचा था : जीवन का भी बहुत अंश यों ही फल-फल बह जाता है। हम उसके बहुत थोड़े अंश का ही उपयोग कर पाते हैं, पर मानते रहते हैं कि इतने काम के लिए इतनी शक्ति, इतने साधन चाहिए, जबकि सत्य होता है यह कि हम उससे बहुत कम शक्ति और साधनों से ही यह काम कर सकते हैं। *(ज़िन्दगी मुसकरायी से साभार)*

व्यंग्य

आपका राशिफल

लेखक—श्री रणजीत कबीरपंथी

भ्रष्टाचार

आपकी राशि 'घूस', स्वामी 'धन' और वर्ण 'भ्रष्ट' है। आपका भूत भी उज्ज्वल था और भविष्य भी उज्ज्वल रहेगा। क्योंकि आपको अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हो चुकी है। यद्यपि समूचे विश्व ने आपको अपना लिया है तथापि भारत में आपकी उन्नति के द्वार विशेष रूप से खुले हुए हैं।

हम जानते हैं कि सत्य और ईमानदारी की आप पर नजरें टेढ़ी रहती हैं। शासन और उसकी विभिन्न योजनाएं 'राहू' और 'केतु' की दृष्टि से देखकर आपको ग्रस लेना चाहती हैं। परन्तु आपके ग्रह-योग अति प्रबल हैं। इसलिए इनसे भयभीत होने की आवश्यकता नहीं। क्योंकि योजनाओं को क्रियान्वयन करने वाले अफसर, बाबू और कर्मचारीगण आपसे हार्दिक प्रेम करते हैं। अतः आपका कौन बाल बांका कर सकता है?

वर्तमान समय में भारत शासन ने आपको जड़-मूल से उखाड़-फेंकने के लिए जो विशेष कार्यक्रम चला रखा है, उससे घबराने की कोई आवश्यकता नहीं। क्योंकि आपकी बहिन बेईमानी ने पहिले से ही आपकी सुरक्षा के सब इन्तज़ाम कर रखे हैं।

वर्ष में मार्च महीने, संसद एवं विधान-सभा सत्रों के दौरान थोड़ा सचेत रहें। सत्य और ईमानदारी से आपका बैर है। भूलकर भी उनका साथ न करें।

बेईमानी

आपकी राशि 'कुटिलता', स्वामी 'गद्दार' और वर्ण 'काले धन' जैसा है।

आपके सहयोगियों एवं समर्थनकर्ताओं की लम्बी-चौड़ी पलटन है। आपको चिन्ता किस बात की? अतः आप तो अपना कार्य करती रहें। जलने वाले जला करेंगे, मरने वाले मरा करेंगे। किस्मत आपके साथ है। व्यर्थ ही किसी बात की चिन्ता न करें। जब व्यक्ति स्वयं अपने साथ बेईमानी करने से नहीं चूकता तो फिर वह दूसरों के साथ कैसे नहीं करेगा?

अपने प्रियतम 'झूठ' की सेवा-चाकरी करने से दिल मत चुराना। फिर तो आपकी पौ बारह पच्चीस और दसों उंगलियां घी में ही समझो।

मिलावट

आपकी राशि 'मक्कारी', स्वामी 'धूर्त' और वर्ण 'मलिन' है। आपका जन्म हुए अभी कुछ ही दशक हुए हैं। परन्तु शुभ लग्न मुहूर्त्त में और अच्छे युग में आपने जन्म लिया है। इसलिए आप खूब फूलेंगी-फलेंगी।

आपका डील-डौल, आकार-प्रकार, रंग-रूप और अन्य सभी लक्षण बेईमानी से मिलते-जुलते हैं। बहुत कम समय में ही आप पर्याप्त प्रगति कर लेंगी।

व्यापारियों की गोद आपको हृष्ट-पुष्ट करने के लिए सर्वोत्तम स्थान है। उन्हीं की संगत में अधिक समय गुजारना!

आपने बेईमानी की तरह 'झूठ' का व्रत प्रारम्भ किया या नहीं? यदि नहीं तो आज से ही प्रारम्भ कर देना। आपकी हस्तरेखाओं को देखने से ज्ञात होता है कि आपने उम्र काफी लम्बी पाई है।

चोरी

आपकी राशि 'नीचता', स्वामी 'अपयश' और वर्ण 'घृणित' है। आप तो साक्षात् अवगुण सम्राट 'झूठदेव' की व्याहता धर्मपत्नी हैं। इसलिए सर्वदुर्गुणों की इष्ट साम्राज्ञी हैं।

विश्व के शक्तिशाली व्यक्तियों (चोर, लुटेरों, डाकुओं) के हृदय में आप विराजमान हैं। इसलिए आपका तो सर्वत्र मंगल ही मंगल है।

अवगुण सम्राट 'झूठदेव' की तन, मन और वचन से सेवाकर पतिव्रत-धर्म को निभाती रहें। पूर्ववत् जीवन में चहुंमुखी उन्नति होती रहेगी।

ईर्ष्या

आपकी राशि 'वेदना', स्वामी 'वैभव' और वर्ण 'मटमैला' है। देवी, आपको तो सभी ने दिल के झरोखे में बिठा रखा है। आप पर्दानशीन जो ठहरीं। अन्य सभी को तो प्रकट होकर अपने कार्यों को करने के लिए बहुत भागदौड़ मचानी पड़ती है। परन्तु आपको तो कुछ भी श्रम नहीं करना पड़ता और आपका काम बन जाता है।

आपके विषय में तो हमारा इतना ही कहना है कि यों ही लोगों की धड़कन बढ़ा-बढ़ा कर अधमरा करती रहें ताकि उन्हें जलाने के लिए उनके रिश्तेदारों को लकड़ी की कम व्यवस्था करनी पड़े। और वे लकड़ी की बचत कर सकें। ऐसा होने से वनों का संरक्षण भी होगा।

आपको क्या खतरा हो सकता है! भला, आप ही सोचिये, अपने दिल जैसी अमूल्य और नाज़ुक चीज़ को कोई कैसे खतरे में डालना पसन्द करेगा। भविष्यवक्ता होने के नाते हम आपकी मंगलकामना करते हैं। आपके दर्शन लाभ हुए। अस्तु, धन्यवाद!

क्रोध

आपकी राशि 'अग्नि', स्वामी 'काल' और वर्ण 'लाल' है।

आपकी तो बात-बात में आदमी को ज़रूरत पड़ती रहती है। तनिक भी प्रतिकूलता आने पर व्यक्ति आपके बिना नहीं रह सकता। आप भी कृपा करके तत्काल आ जाते हैं और उस पर इस कदर छा जाते हैं कि वह अपना आपा खोकर दूसरों का तो अहित करता ही है, साथ ही अपना भी अहित कर बैठता है।

इस प्रकार आप तो बहुत बलवान हैं। लम्बी उम्र पायी हैं, और क्या चाहिए?

अहंकार

आपकी राशि 'दर्पोक्ति', स्वामी 'पतन' और वर्ण 'विषैले नागवत्' है।

आप अत्यन्त शक्तिशाली हैं। लंकाधिपति रावण, हिरण्यकश्यपु, कंस, जरासंध, शिशुपाल, दुर्योधन जैसे बलशाली राजाओं को आपने ही मिट्टी में मिलाया। हमारा कहना मानें तो आप एक काम और करें। और वह यह है कि आप अक्सर धनी-मानी व्यक्तियों के घरों में ही डेरा डाले रहते हैं। आपको चाहिए कि गरीबों की झोपड़ियों में भी जाकर उन्हें प्रेरित किया करें ताकि वे भी उत्साहित होकर आपकी सेवा-चाकरी करने को तैयार हो जायें। फिर आपका काम बना-बनाया है।

आपको किसी देवी-देवता की पूजा-उपासना करने की आवश्यकता नहीं। आप अपने में पूर्ण सक्षम हैं। हां, झुग्गी-झोंपड़ी वालों को अपने पक्ष में करना न भूलें। ताकि आपके पक्ष का पलड़ा भी भारी बना रहे।

हिंसा

आपकी राशि 'पाशविकता', स्वामी 'सर्वनाश' और वर्ण 'रक्त' है। चाकू, छूरा, तोप, तलवार, बन्दूक, बम एवं आधुनिक अनेक आणविक अस्त्र-शस्त्र आपके 'वाहन' हैं। इसलिए आपको किसी से भयभीत होने की कोई आवश्यकता नहीं है। आपका भूत भी उज्ज्वल था और भविष्य भी उज्ज्वल रहेगा।

हम इस बात को भली-भांति जानते हैं कि बहुधा लोगों ने आपका प्रबल विरोध किया है। परन्तु आप भी गजब की जिन्दा-दिल निकलीं कि आज दिन तक विश्व की कोई भी शक्ति आपको कुचलने में सफल नहीं हो सकी। जीवन में प्रत्येक प्रतिकूल परिस्थिति से संघर्ष करती हुई आप सैदव ही प्रगति-पथ पर आगे ही आगे कदम बढ़ाती रही हैं।

बुद्ध, महावीर, कबीर, नानक, दादू और पलटू जैसे सन्त-महात्माओं ने सदैव ही आपके विरुद्ध 'तन्दूरा' बजाया है। परन्तु तोप का मुकाबला भला 'तन्दूरा' कैसे और कहां तक करें? और फिर उसे कोई सुनने वाला भी तो होना चाहिए?

हां, इस विषय में अपनी करुण कहानी हमें न सुनाओ। हम तो सब जानते हैं कि पूज्य 'बापू' की हत्या के क्षणों में आपकी बज्रवत छाती भी दहल उठी थी। और हमसे यह बात भी छिपी हुई नहीं है कि इस मर्मान्तक घटना से आहत होकर कई दिनों तक आप

'बिड़ला मन्दिर' की सीढ़ियों पर बैठी-बैठी रोती रहीं...सिसकती रहीं...।

ख़ैर, जो बीत गया उसे भूल जाओ और आगे की सुध लो। अब आपको उस तरह कहीं दुबकने और सुबकने की कोई आवश्यकता नहीं। अब तो सारा विश्व एटम, हाइड्रोजन, न्यूट्रान और अन्यान्य अनेक घातक अस्त्र-शस्त्र निर्मित कर आपको निमन्त्रण पर निमन्त्रण दे रहा है। फिर हम जैसे भविष्यवक्ताओं ने भी तो यह भविष्यवाणी कर रखी है कि वर्ष केवल आपका है। इसलिए आपको हम यह राय देते हैं कि आप अपने विराट स्वरूप में प्रकट होकर लोगों की मनोकामना पूर्ण करें।

लगता है, दुनिया के लोग भी बहुत-सी बातों में बड़े दूरदर्शी हो गये हैं। शायद आपके आगमन का इन्हें पूर्वाभास हो गया है। इसीलिए तो आपकी भावभीनी अगवानी करने के लिए इन्होंने वर्ष को 'विकलांग-वर्ष' के रूप में मनाने का निर्णय लिया था। क्या आप देखती नहीं कि किस प्रकार ये आपके आगमन के दो वर्ष पूर्व ही आपकी अगवानी करने हेतु 'विकलांग' बनकर पूर्वाभ्यास में लगे हुए हैं।

देखो न, आपके विराट स्वरूप के दर्शन पाने के लिए लोग कितने आतुर एवं बेचैन दिखाई दे रहे हैं? फिर शुभ कार्य में विलम्ब किस बात का? अतः अब आप और देरी न करें।

शायद आपके पास समयाभाव है। इसके लिए तो हमारा यह सुझाव है कि आप अपने पुराने वाहन (तलवार-बन्दूकादि) की अपेक्षा आधुनिक तीव्रगामी वाहनों (बम, राकेटों एवं प्रक्षेपास्त्रों) द्वारा ही यात्रा करें ताकि विश्व के प्रत्येक देश और व्यक्ति से आपका मिलन शीघ्रता से हो सके।

एक बात देखकर हमें भी आश्चर्य हो रहा है कि आप भारत के कुछ नगर (लखनऊ, अलीगढ़, बनारस) एवं विश्व के (ईराक, ईरान, इजराईल जैसे) छोटे-छोटे और कमजोर राष्ट्रों में ही क्यों भटक रही हैं? लगता है कि अमेरिका, रूस, चीन जैसे बड़े-बड़े और सुसम्पन्न राष्ट्रों ने आपको बहका लिया है। परन्तु हमारा आपसे विनम्र सुझाव है कि इस प्रकार आप किसी के झांसे में आकर अपने ही हाथों अपने पांव पर कुल्हाड़ी न मारें। समूचा विश्व आपका है। सर्वत्र ही विचरण करें।

खैर, यदि वर्तमान हालात और लोगों के मनोमस्तिष्क की यही दशा बनी रही तो शीघ्र ही आपकी ख़्याति में चार चांद लगने ही वाले हैं। हां, अहिंसा और सत्य आपके कट्टर विरोधी हैं। उन्हें रंचमात्र भी लिफ्ट न दें।

अन्त में हम दावे से कह सकते हैं कि अभी आपको कहीं कोई खतरा नहीं है। क्या कहा...'संयुक्त राष्ट्र संघ' से? न...न...न...उससे न डरो। भला, नक्कारखाने में तूती की आवाज भी किसी ने सुनी है?

बलात्कार

आपकी राशि 'वासना', स्वामी 'काम' और वर्ण 'भद्दा' है। इसलिए आपका तो सर्वत्र मंगल-ही-मंगल है।

जब तक मानव-मस्तिष्क में वासना के कीड़े कुलबुलाते रहेंगे तब तक आपका कोई भी बाल बांका नहीं कर सकता है।

आपका बोलबाला हर युग में रहा है। जब सत्युग, त्रेता, द्वापर में आपके शत्रु आपको नष्ट नहीं कर सके तो अब तो कलियुग चल रहा है। आपका कौन क्या बिगाड़ सकता है?

अतः आपको किसी भी प्रकार से भयभीत होकर लुकछिपकर कार्य करने की आवश्यकता नहीं है। क्या आप भूल गये हैं कि जब देवाधिदेव इन्द्र ने आपके ही बल पर सती अहिल्या का सतीत्व भंग कर अपना भी पतन कर लिया था? वह तो इन्द्र था और आज के युग में तो सभी इन्द्रियों के ही दास बने हुए हैं। फिर ये भला आपका कैसे क्या बिगाड़ सकते हैं?

जब आपकी सुरक्षा का बीड़ा स्वयं पुलिस ने ही उठा रखा है। इसके उपरान्त भी आप डरकर और लुक-छिप कर अपना कार्य करते हों; यह आपके महत् व्यक्तित्व और गौरवमयी परम्परा के अनुकूल नहीं है।

ऐसा करना आपको शोभा नहीं देता है। अरे! जब सैयां बने कोतवाल तो डर काहे का? बेधड़क रहो।

हां, सच्चरित्रता ने सदैव आपका विरोध किया है। उसे कभी भी अपनी ड्योढ़ी मत चढ़ने देना। फिर तो आपका भविष्य उज्ज्वल ही उज्ज्वल है।

अपनी इष्ट कुलदेवी 'कामुकता' की उपासना करते रहना। जब तक उसकी छत्रछाया आपके ऊपर बनी रहेगी, जगत में आपकी दुन्दुभी भी बजती रहेगी।

झूठ

आपकी राशि 'निन्दा' और वर्ण 'मिश्रित' है। आप तो सब अवगुणों के स्वामी हो। फिर आपका कौन स्वामी हो सकता है? भला, स्वामी का भी कोई स्वामी होता है?

अतः विश्व में आपका एकछत्र राज्य है। आपके बिना पति हो या पत्नी, पिता हो या पुत्र, ग्राहक हो या व्यापारी, अफसर हो या नेता, कहां तक नाम गिनाएं कोई एक कदम भी आगे नहीं धर सकता है।

आप सभी दुर्गुणों के लिए प्रकाशस्तम्भ हैं। अस्तु अपने सहयोगियों एवं फौज-पलटन से कहते रहो कि–

'साथियो बढ़े चलो, बढ़े चलो।
सत्य को गर्त में गिराते चलो

बस, और कुछ भी नहीं करना है आपको।

मोह

आपकी राशि 'इच्छा', स्वामी 'पुनरागमन' और वर्ण 'लुभावना' है। इस प्रकार आपकी महत शक्ति के आगे झुककर और विवश होकर जीवों को पुनः-पुनः मृत्युलोक में आना ही पड़ता है। आप सबके आराध्य देव हैं।

आपको खतरा रहता है तो कतिपय साधु, सन्त और भक्तों से। उनसे सावधान रहना है। इसका अर्थ यह मत समझ लेना कि आप सभी साधु, सन्तों एवं भक्तों से भयभीत बने रहें। अरे! साधु, सन्त एवं भक्त के वेश में नकली भी हैं। उनसे डरने की ज़रूरत नहीं है।

जब आप योगी, जंगम, सेवड़ा, दरवेश, ध्यानी, पण्डित, ऋषि, मुनि और यहां तक कि ब्रह्मा, विष्णु और महेशादि देवताओं तक को अपनी ओर आकर्षित कर चुके हो तो फिर साधारण मनुष्यों से क्या डरना?

पाप

आपकी राशि 'नरक', स्वामी 'कुकर्म' और वर्ण 'काला' है।

आप, आप तो सब दुर्गुणों के बाप हैं। किसकी हिम्मत है जो आपसे आंखें चार कर सके? घर-घर में और यहां तक कि देवालयों और तीर्थों तक में आपने अपने 'अंगद पांव' जमा रखे हैं।

मानते हैं कि आप बहुत वृद्ध हो गये हैं, परन्तु दिल आपका अभी भी जवान बना हुआ है। आपका नाम दसों दिशाओं में गूंज रहा है। अब आपको और क्या चाहिए!

क्या कहा...धर्म से डर लगता है? अरे! आप भी कैसी बहकी-बहकी बातें कर रहे हैं। श्रीमान् जी! ये तो सम्प्रदाय हैं, सम्प्रदाय! इनका धर्म से क्या वास्ता? ये तो प्रकारान्तर से आपकी ही सेवा में लगे हुए हैं। इनका भय तो आप व्यर्थ ही पाल रहे हैं।

शायद पूर्व में कभी आपको धर्म ने झटका दे दिया होगा। इसलिए आपने इतनी बातें कहीं। ठीक भी है! दूध का जला छाछ को भी फूंक-फूंककर पीता है। परन्तु अब ऐसी बात नहीं रही। क्योंकि आज न तो दूध ही है और न छाछ ही। केवल चाय बची है जिसे लोग स्वयं ही फूंक-फूंककर पी रहे हैं।

अतः सारा जगत आपका है। कहीं भी रहो सर्वत्र आपकी जय-जयकार हो रही है। आप तो डंके की चोट कहो—

"जोर लगा ले अरे! जमाने कितना जोर लगायेगा?
इस जग में पाप का झण्डा कभी न झुकने पायेगा।"

(पारख प्रकाश, जनवरी)

व्यवहार वीथी

सुखी जीवन की कला

दुनिया में कौन ऐसा आदमी है जो सुखपूर्वक जीवन जीना नहीं चाहता, सुखपूर्वक जीवन जीने के लिए ही तो हर आदमी अपने-अपने ढंग से नाना प्रयास और दौड़भाग कर रहा है। इसके बावजूद बिरले आदमी ही सही ढंग से सुखपूर्वक जीवन जी पा रहे हैं, अन्यथा अधिकतम लोगों का मन क्षोभ, शिकायत, भय, चिन्ता और तनाव से पीड़ित है। जो बाहर से सुखी-संपन्न दिखाई पड़ते हैं भीतर से वे भी उतने दुखी-विपन्न हैं, जितने अन्य लोग।

आदमी सब प्रकार से सब समय पूर्ण सुखी जीवन तो तभी जी सकता है जब उसकी सारी आशा-तृष्णा, वैषयिक सुखभोग की लालसा, आकांक्षा एवं वासनाओं का शमन होकर उसका मन पूर्ण संयत, स्ववश, शांत एवं आत्मलीन हो, परन्तु यह तो किसी बिरले की बात है। घर-परिवार-समाज में अनेक स्वभाव, संस्कार, रुचियों के लोगों के बीच, संग-साथ रहते हुए सुखी जीवन कैसे जिया जाये, इस बात पर भी बहुत कम लोग ध्यान देते हैं। अधिकतम लोगों की तो यही समझ है कि स्वस्थ शरीर, भरा-पूरा परिवार, बड़ा मकान, बहुत धन-जमीन-जायदाद, पद-अधिकार, प्रभुता आदि सुखी जीवन जीने के साधन और आधार हैं तथा इनसे संपन्न व्यक्ति सुखी है। निश्चित ही ये सब भी सुखी जीवन जीने के साधन हैं, परन्तु ये सब साधन बहुत ऊपर-ऊपर के हैं और दूर तक साथ नहीं दे सकते, क्योंकि इनसे संपन्न व्यक्ति भी दुखी दिखाई पड़ते हैं। इसके विपरीत इन सबसे विपन्न और थोड़ी वस्तुओं में सामान्य स्तर का जीवन जीने वाले कितने लोग सुखी, शांत और संतुष्ट दिखाई पड़ते हैं।

जिस प्रकार संसार में अनेक प्रकार की कलाएं हैं उसी प्रकार सुखी जीवन जीने की भी कलाएं होती हैं जिनके अभाव में अन्य सारी कलाएं बे-कला साबित होती हैं। आदमी कहीं भी रहे वह व्यवहार को अनदेखा नहीं कर सकता। यदि उसका व्यवहार उलझा हुआ, कटुता एवं कलहपूर्ण है तो वह सुखी जीवन नहीं जी सकता। व्यवहार को सुन्दर बनाकर ही आदमी सुखी जीवन जी सकता है। व्यवहार को सुन्दर बनाने एवं सुखी जीने की अनेक कलाओं में से कुछ पर हम यहां विचार करें।

. **स्वाथ-त्याग**—स्वार्थ का अर्थ है दूसरों की परवाह किये बिना सब समय अपनी सुख-सुविधा पर ध्यान देना। दूसरों को मिले या न मिले मुझे सबसे पहले और ज्यादा से ज्यादा मिले—यह भाव-आचरण ही स्वार्थ है। ऐसा भाव-आचरण रखने वाला आदमी कभी सुखी जीवन नहीं जी सकता। उसका मन सब समय क्षोभ, शिकायत और तनाव से भरा रहेगा, हर समय उसे कमी-कमी का अनुभव होता रहेगा और उसका व्यवहार उलझा हुआ रहेगा। इसके विपरीत जो आदमी स्वयं के स्वार्थ पर संयम रखकर दूसरों की सुख-सुविधा पर ध्यान रखता है, जिसे दूसरों को खिलाकर खाने में आनन्द आता है, उसके मन में न किसी बात के लिए क्षोभ होगा और न किसी के लिए शिकायत। उसका मन भरा-भरा रहेगा और व्यवहार सुलझा हुआ एवं सुखद।

जो व्यक्ति सेवा करने में, कष्ट सहन करने में एवं विपत्ति के समय आगे रहता है, किन्तु सुविधा लेने में, स्वार्थ में, भोग में पीछे रहता है, वह सबके मन को मोह लेता है। फिर उसे चाहने वालों की कमी नहीं रहती। लोग पहले से उसके सुख-सुविधा का ध्यान रखने लगते हैं। इसके विपरीत जो व्यक्ति सेवा करने में, कष्ट एवं विपत्ति के समय तो पीछे रहता है किन्तु भोग-स्वार्थ में सदैव आगे रहता है वह अपने ही घर-परिवार-समाज के सदस्यों की नजरों से गिर जाता है, सबके चित्त से उतर जाता है। दूसरे लोग उस पर ध्यान देना बंद कर देते हैं। ऐसे व्यक्ति का व्यावहारिक जीवन सदैव कष्टपूर्ण एवं उलझा हुआ होता है।

अतः क्षोभ, शिकायत, चिन्ता एवं तनाव से बचे रहकर लोगों के बीच प्रिय पात्र बने रहकर अपने व्यावहारिक जीवन को सुखमय बनाना चाहते हैं तो

अपने व्यक्तिगत भोग-स्वार्थ एवं अहं पर संयम रखकर सेवा करने में तथा घर-परिवार-समाज के सदस्यों की कष्ट-विपत्ति से रक्षा करने में सदैव आगे रहें।

. **अपने पर कम से कम खर्च करें**—भले ही आप घर-परिवार-समाज के मुखिया-व्यवस्थापक हों और सबसे अधिक मेहनत एवं धनोपार्जन आप ही करते हों तो भी अपने पर कम से कम खर्च करें। अपनी इच्छाओं पर संयम रखें। इससे एक तो आपके मन में संतोष रहेगा, दूसरे आप गलत आदतों एवं दुर्व्यसनों के शिकार होने से बच जायेंगे और तीसरी बात जो पैसा बचेगा वह या तो मुसीबत के समय काम आयेगा या दूसरों की सेवा में लगेगा। इससे परिवार के सदस्यों में भी कम खर्च करने की आदत बनेगी और उनके मन में असंतोष नहीं होगा।

अपने पर अधिक खर्च करने वाले व्यक्ति को कभी पूरा नहीं पड़ता। उसका मन सदैव असंतोष एवं अभाव की अनुभूति में जलता रहता है। फलस्वरूप उसका मन हर समय चिढ़ा-चिढ़ा रहता है, घर-परिवार के सदस्य विरोधी जान पड़ते हैं और उसे हर किसी से शिकायत बनी रहती है, जिससे न तो वह स्वयं सुखपूर्वक जीवन जी पाता है और न घर-परिवार के सदस्य।

आप कितना अधिक कमाते हैं इसका महत्त्व तो है ही, इससे अधिक महत्त्वपूर्ण है कि आप अपने पर कितना कम खर्च करते हैं और कैसे खर्च करते हैं। जो थोड़ी वस्तुओं में गुजर करना जानता है, उसे कभी कमी का अनुभव नहीं होता। जो स्वयं को प्राप्त वस्तुओं को दूसरों की सेवा में लगाने को तत्पर रहता है, समय से स्वयं न खाकर दूसरों को खिलाने के लिए तैयार रहता है, उसे कमी का अनुभव पीड़ित क्यों करेगा। न उसके मन में क्षोभ रहेगा और न शिकायत। इससे उसका व्यावहारिक जीवन सुलझा हुआ रहेगा साथ ही सुखद भी।

. **सेवा-अहसान को याद न रखें**—यदि आपने किसी की किसी प्रकार सेवा की है या किसी की विपत्ति-मुसीबत में किसी प्रकार उसकी सहायता की है, तो उसे बिलकुल भुला दें। अपने द्वारा किसी की किसी प्रकार की हुई सेवा-सहायता को बराबर याद करते रहने से मन में अहंकार आयेगा कि मैंने अमुक-अमुक की इस प्रकार सेवा-सहायता की है और उनसे कुछ पाने की इच्छा जगेगी चाहे वह प्रशंसा एवं एहसान ही क्यों न हो। और जब प्रशंसा नहीं मिलेगी, सामने वाला एहसान नहीं मानेगा तब उसके प्रति क्रोध जगेगा जिससे अपने मन का शांति-सुख नष्ट हो जायेगा। साथ ही किसी की सेवा-सहायता करने से अरुचि हो जायेगी। मन में यह भाव आयेगा कि जब किसी से प्रशंसा और एहसान नहीं मिलता तब हम सेवा-सहायता क्यों करें।

यह सदैव याद रखें कि सेवा-सहायता अपना कर्तव्य समझकर चित्त-शुद्धि के लिए करना चाहिए न कि प्रशंसा-सम्मान पाने के लिए या एहसान जताने के लिए। चित्त-शुद्धि होने पर सच्ची प्रसन्नता और सच्चे सुख का अनुभव किया जा सकता है और चित्त-शुद्धि के लिए सेवा सर्वोत्तम साधन है।

किसी की सेवा-सहायता करते समय मन में यह भाव नहीं रखना चाहिए कि समय आने पर यह भी इसी प्रकार मेरी सेवा-सहायता करेगा। ऐसा भाव रखना और सोचना दुख, रोग एवं विपत्ति को आमंत्रण देना है। किसी को सेवा-सहायता की आवश्यकता दुख, रोग एवं विपत्ति आने पर ही होती है। यदि किसी रोगी, दुखी एवं विपत्तिग्रस्त व्यक्ति की सेवा-सहायता करते समय हमारे मन में यह भाव रहता है कि समय आने पर यह भी इसी प्रकार मेरी सेवा-सहायता करेगा तो हमने अनजाने में रोग, दुख एवं विपत्ति को आमंत्रण पत्र भेज दिया है कि ऐ रोग, दुख एवं विपत्ति तुम मेरे पास आओ ताकि इस व्यक्ति की मैंने जो सेवा-सहायता की है उसका बदला यह चुका सके। और जब हमारा आमंत्रण पाकर हमारे पास रोग, दुख, संकट आते हैं तब हम शिकायत करते हैं कि मैंने इतनी-इतनी सेवा, सहायता, परोपकार का काम किया फिर भी मेरा दुख दूर नहीं हो रहा है।

यह सदैव ध्यान रखना चाहिए कि हमारे मन में जिस प्रकार के विचार, चिंतन एवं भाव रहते हैं धीरे-

धीरे हमारा जीवन वैसा ही बन जाता है। इसलिए मन में सदैव सकारात्मक विचार, चिंतन एवं भाव बनाये रखना चाहिए। खास बात यह है कि जो दूसरों की सेवा-सहायता करने को सदैव तत्पर रहता है और सेवा-सहायता करने के बाद उसे भुला देता है, प्रशंसा-सम्मान पाने की कामना नहीं रखता, दूसरों द्वारा सेवा-सहायता न मिलने पर शिकायत नहीं करता, उसका चित्त-मन शुद्ध रहता है और क्षोभ-तनाव से रहित वह सुखी जीवन व्यतीत करता है।

. **सम्मान पाने की इच्छा न रखना**—बिरले विवेकी पुरुषों को छोड़कर प्रायः हर आदमी के मन में यह इच्छा रहती है कि लोग मेरा सम्मान करें, प्रशंसा करें, मुझे आदर दें और अच्छा मानें। जिसके मन में यह इच्छा जितनी ज्यादा होती है वह आदमी उतना अशांत और दुखी रहता है तथा उसका मन शिकायतों से भरा रहता है, क्योंकि उसे जितना आदर-सम्मान मिल जाये लगता है कि जैसा और जितना चाहिए उतना आदर-सम्मान नहीं मिला।

सुखी रहने का बढ़िया तरीका है कि आदर-सम्मान-प्रशंसा पाने की इच्छा छोड़कर अधिक से अधिक सेवा, शुभ कर्म, परोपकार करते रहना और सद्गुण सदाचारमय जीवन व्यतीत करना। अपना काम है आत्मकल्याण-आत्मशांति के मार्ग पर चलते हुए जो संभव हो लोक-सेवा का काम करते चलना। प्रशंसा करना या न करना अन्य लोगों का काम है। उसकी चिंता हम क्यों करें। जिन्हें अच्छा लगेगा वे प्रशंसा करेंगे और जिन्हें बुरा लगेगा वे निन्दा करेंगे। कोई हमारा सम्मान कर दे तो उससे हमें क्या मिल जायेगा। इसलिए सम्मान पाने की इच्छा बिलकुल ही न करे।

जो बन सके दूसरों का आदर-सम्मान कर दे, उनके अच्छे गुण-कर्म की प्रशंसा भी कर दे, जिससे उन्हें और अच्छा कर्मों करने तथा अच्छा जीवन जीने की प्रेरणा मिलती रहे। यह भी समझना चाहिए कि जो निष्काम भाव एवं निच्छल हृदय से दूसरों का आदर-सम्मान करता रहता है तथा उनके अच्छे गुण-कर्मों की प्रशंसा करता रहता है और स्वयं सन्मार्ग पर चलता रहता है लोगों की दृष्टि में वह आदरणीय एवं सम्माननीय हो जाता है। इसलिए यदि सुखी जीवन व्यतीत करना चाहते हैं तो आदर-सम्मान पाने की इच्छा बिलकुल न रखें किन्तु निष्कामभाव पूर्वक सेवा-सत्कर्म करते रहें।

. **निन्दा-चुगुली का त्याग करें**—दुनिया में सद्गुणी-दुर्गुणी, सज्जन-दुर्जन, संत-असंत सब समय रहे हैं, आज हैं तथा आगे सब समय रहेंगे। सद्गुणी, सज्जन एवं संत की प्रशंसा तो अवश्य करे जिससे अन्यों को भी वैसा बनने की प्रेरणा मिले, किन्तु निन्दा किसी की न करे। किसी की निन्दा करना अपने तथा दूसरों के मन को खराब-कलुषित करना है। सच तो यह है कि अपना मन खराब हुए बिना कोई किसी की निन्दा करेगा ही क्यों! और जिसका मन ही खराब है वह सुखी जीवन कैसे जी सकता है।

कोई आपकी निन्दा कर रहा है तो अपनी निन्दा सुनकर प्रतिक्रिया में न पड़ें। प्रतिक्रिया में पड़कर किसी की निन्दा करना, किसी को भला-बुरा कहना अपनी हार है। यदि हम सही हैं, सही रास्ते पर चल रहे हैं और उचित कर्म कर रहे हैं तो निन्दा सुनकर क्षुब्ध क्यों हों। बल्कि निन्दा सुनकर सेवा-सत्कर्म का काम और अधिक उत्साह के साथ करते रहें, निन्दा करने वाला स्वयं मर जायेगा। कोई हमारी निन्दा करता है तो इसमें हमारा कोई नुकसान नहीं है, हमारा नुकसान तो तब है जब हम स्वयं दूसरों की निन्दा करने लग जायें। दूसरों में बुराई-दोष ढूंढने वाला और बुराई-दोष देखकर उसकी निन्दा करने वाला न कभी मानसिक प्रसन्नता का अनुभव कर सकता है और न सुखपूर्वक जीवन जी सकता है। कोई यदि सचमुच में बुरा-दोषी-दुर्गुणी है ही तो भी उसकी निन्दा करने की क्या आवश्यकता! गंदगी को दूर करना, ढंकना चाहिए कि उसे उघाड़कर और फैलाना चाहिए। इसलिए यदि सचमुच में सुखपूर्वक जीवन जीना चाहते हैं तो दूसरों की निन्दा-चुगुली करने का सर्वथा त्याग कर दें और किसी में सद्गुण-सदाचार, अच्छाई देखकर उसकी प्रशंसा अवश्य करें।

. **भूलना सीखें**—कुछ बातें ऐसी होती हैं जिन्हें बराबर याद करते रहना चाहिए तो कुछ बातें ऐसी होती हैं जिन्हें सदा के लिए पूरी तरह भूल जाना चाहिए। किसी ने आपका अपमान किया है, कुछ आर्थिक नुकसान पहुंचाया है, किसी काम को बिगाड़ दिया है, आपके काम में रुकावट डाली है, आपको आगे बढ़ने नहीं दिया है, समर्थ होते हुए आपकी विपत्ति में साथ नहीं दिया है, आपको दुख दिया हैं, तो इन बातों को पूरी तरह से भूल जायें। इन बातों को याद करते रहने से आप न तो मानसिक शान्ति-प्रसन्नता का अनुभव कर सकेंगे और न सुखपूर्वक जीवन जी सकेंगे। क्योंकि इन बातों को याद करते रहने से ऐसा करने वालों के प्रति आपके मन में क्रोध, द्वेष, वैर की आग जलती रहेगी और आपका मन तनाव से भरा रहेगा, फलतः आपकी मानसिक शांति पूरी तरह से नष्ट हो जायेगी।

जिस प्रकार मुरदे को सदा के लिए कब्र में दफना दिया जाता है, कभी निकालकर देखा नहीं जाता इसी प्रकार इन सारी बातों को अपनी मानसिक कब्र में दफना दें, सदा के लिए भूल जायें। इनकी कभी याद न करें। घर-परिवार के सदस्य जिनके बीच रहकर जीवन-गुजर करना होता है उनमें से कभी किसी ने आपकी बात नहीं मानी है, आपकी आज्ञा का उल्लंघन किया है, आपकी अवज्ञा की है, आपका उचित सम्मान नहीं किया है, उनकी किसी गलती पर समझाने पर गलती स्वीकार न कर उद्दण्डतापूर्वक व्यवहार किया है, इसी प्रकार की कुछ और बातें जो आपके मन के प्रतिकूल हुई हैं उन्हें सदा के लिए भुलाकर ही उनके साथ सुन्दर व्यवहार किया जा सकता है और सुखपूर्वक जीवन जिया जा सकता है। इसलिए भूलना भी सीखें।

. **देना सीखें**—जो आप दूसरों से पाना चाहते हैं वह दूसरों को देना शुरू करें, क्योंकि पाने का बढ़िया तरीका है देना-बांटना। जो देना-बांटना जानता ही नहीं है वह मिलता है उसका अनुभव भी कैसे कर सकता है। मांगने वालों का मन सदैव असंतुष्ट बना रहता है, उसे हर समय कमी एवं खालीपन का अनुभव होता रहता है फिर वह सुखपूर्वक जीवन कैसे जी सकता है। इसलिए मांगना नहीं देना और बांटना शुरू करें।

यदि आप दूसरों से प्रेम, स्नेह, आदर, सम्मान, प्रशंसा और सुख पाना चाहते हैं तो यही सब दूसरों को अधिक से अधिक देना और बांटना शुरू करें। आप जितना इन्हें बांटते-देते जायेंगे उतना आपको मिलता चला जायेगा। याद रखें, देने-बांटने वालों को न मिलने की शिकायत कभी नहीं होती क्योंकि उसका मन हर समय भरा-भरा और संतुष्ट रहता है। न मिलने की शिकायत तो वे करते रहते हैं जो कभी देना-बांटना जानते ही नहीं। वे हर समय अंदर से खाली और असंतुष्ट रहते हैं। फिर सुखपूर्वक जीवन कैसे जी सकते हैं।

ध्यान रखें, सुखी जीवन वही जी सकता है जिसका मन क्षोभ, शिकायत, तनाव, चिंता से रहित होता है और शांत, संतुष्ट तथा प्रसन्न रहता है। इसके लिए ऊपर कुछ बातों पर विचार किया गया। स्वार्थ का त्याग, अपने पर कम खर्च, किसी के प्रति की गयी सेवा को याद न कर, सम्मान-सेवा पाने की इच्छा न रखकर, निन्दा-चुगुली का त्याग कर, किसी की गलती-दोष को भुलाकर तथा दूसरों को प्रेम-स्नेह, सम्मान-सुख देकर स्वयं सुखपूर्वक जीवन जिया जा सकता है।

—धर्मेन्द्र दास

तुम्हारे खातिर है, जज़बाती

रचयिता—डॉ. राममिलन

हे उदार भगवान कभी तुम, दलितों के घर भी जन्मो,
पैदा हो पिछड़ों के घर भी, खा-पीकर के खूब जमो,
जब भी अवतरित हुए धरती, घर ब्राह्मण या क्षत्रिय का मिला,
है हिन्दू, पिछड़ा दलित अगर, फिर क्यों न तुमसे करे गिला,
समता की ख़ातिर भारत में, सहभागिता का हक है मिला,
तुम्हारा आरक्षण सौ प्रतिशत, घर तुम्हें आरक्षित सदा मिला,
फिर कैसे तुम्हे उदार कहे, यह दलित और पिछड़ा तबका,
कम से कम तुम्हें जो है ढोता, कभी तो दे दो तुम हक उसका,
कभी पैदा हो करके देखो, किसी दलित और पिछड़े के घर,
सिर आंख पे तुम्हें बिठायेगा, वह स्वयं भले ही जाये मर,
पर ऐसा नहीं कभी होगा, घर उसके तुम्हें बदबू आती,
वह तो बेचारा है अन्धा, तुम्हरे खातिर है जज़बाती

साधना-पथ में सावधानी

संकलन—भूपेन्द्र दास

( ) जिस प्रकार घड़े में एक भी छेद होने से सारा पानी धीरे-धीरे बह जाता है। उसी प्रकार साधक के अंदर थोड़ी भी संसारासक्ति रह जाये तो सारी साधना व्यर्थ हो जाती है।

( ) गीली मिट्टी से कोई भी वस्तु बनाई जा सकती है, किन्तु पकी हुई मिट्टी गढ़ने के काम में नहीं आ सकती। उसी प्रकार जिसका हृदय विषय-वासनाओं की ज्वाला में पक गया है उसमें पारमार्थिक भाव नहीं आ सकता।

( ) जैसे चींटी शकर और बालू के एक साथ मिले रहने पर भी बालू को छोड़कर शकर ही खाती है वैसे ही संतजन संसार से सद्वस्तु (आत्मतत्त्व) ही ग्रहण करते हैं और असद्वस्तु (कंचन-कामिनी) का त्याग कर देते हैं।

( ) कागज में यदि तेल लगा हो तो उस पर लिखा नहीं जा सकता उसी प्रकार मन में जब अहंता-ममता, राग-द्वेष रूपी तेल लग जाता है तब साधना नहीं हो सकती। जिस प्रकार उस कागज को रगड़ने पर उस पर लिखा जा सकता है उसी प्रकार अहंता-ममता, राग-द्वेष रूपी तेल लगे हुए मन को जब त्याग रूपी खड़िए से घिसकर शुद्ध किया जाये तभी साधना की जा सकती है।

( ) जो लोग स्वयं तो धर्म की चर्चा नहीं करते वरन् दूसरों को ध्यान-पूजा करते देख उनकी हंसी उड़ाते हैं और धार्मिक पुरुषों की निंदा करते हैं ऐसे लोगों का संग साधक को कभी नहीं करना चाहिए।

( ) जो तालाब छिछला है उसका पानी पीना हो तो धीरे-धीरे लेना चाहिए, अधिक खलबलाने से नीचे का कीचड़ ऊपर उठकर पानी को मैला कर देगा। इसी प्रकार यदि आत्मतत्त्व का आनन्द लेना चाहते हो तो सच्चे सद्गुरु के उपदेश में विश्वास करके धीरे-धीरे साधना करना चाहिए।

( ) लहसून के कटोरे को चाहे जितना धोओ कुछ न कुछ बू (गन्ध) तो रहेगी ही इसी प्रकार बहुत दिनों तक कंचन-कामिनी का उपभोग करने पर लहसून की तरह बू आने लगती है। उससे छूटना मुश्किल पड़ता है।

( ) जैसे कौए का काटा हुआ आम देवता पर चढ़ाया नहीं जा सकता, अपने खाने में भी संदेह रहता है; जैसे नयी हण्डी और दही जमाई हुई हण्डी में दूध रखने पर दूध खराब हो जाता है, वैसे ही वासनावासित मन में साधना हो नहीं सकती।

( ) कटोरे को धधकती आग में गरम करने पर गंध चली जाती है। उसी प्रकार वासना-वासित मन को ज्ञान की आग में जलाने से, भक्ति के सागर में डुबाने से, वैराग्य के सिंहासन में बिठाने से मन विकारों से छूटकर शांत होने लगता है।

( ) कुसंग एवं कुप्रवृत्तियों के गुलाम होने के बाद उसके चंगुल से बच पाना मुश्किल हो जाता है। अतः शान्ति इच्छुक साधना का अभ्यास अभी से प्रारम्भ कर दें।

( ) जैसे वणिक रथ पर जोते हुए घोड़ों को सम्हालता है वैसे इन्द्रियों एवं मन में उठे हुए विकारों को जीतने वाला "साधक" है।

( ) सब्जी बनाते समय कड़ाही में जब तक पानी है तब तक तेल डालने से छन-छन की आवाज आती है। इसी प्रकार हमारे जीवन में जब तक दोष है छन-छन की आवाज आती रहती है।

( ) दर्पण को देखने के लिए आंख चाहिए, दर्पण में देखने के लिए भी आंख चाहिए। जरूरत है आंख की अर्थात विवेक की। अगर विवेक सब समय जाग्रत है तो हम हर जगह से सार (गुण) ग्रहण कर सकते हैं।

( ) गन्ने को चूसने पर वह निरंतर निरस होता जाता है। दुनिया के सभी भोग ऐसे ही हैं। उसका उपभोग करने पर निरस होते जाते हैं, इन्द्रियों की शक्ति भी क्षीण होती चली जाती है। किन्तु भोगों में अधिक आसक्ति होने से अध्यास-वासना दिनोदिन प्रबल होती जाती है।

( ) जब सर्प काटता है तो उस व्यक्ति को नीम की पत्ती खाने को दिया जाता है और जब उसे कड़वी लगती है तो कहा जाता है कि जहर कम है। इसी प्रकार आदमी माया-मोह में लिप्त होता है उस समय उसे नहीं लगता कि माया कष्ट देती है जब धक्का लगता है तब उसे संसार कडुवा लगता है।

( ) (i) धन में सुख नहीं है। (ii) काम केवल शरीर की क्षीणता, मलिनता, शक्तिहीनता है। (iii) लोभ पाप का बाप है। (iv) मोह गले की फांसी है। (v) कडुवी बोली बंदूक की गोली के समान है। (vi) भय जीवन का विनाश है। (vii) सहनशील बनो, धैर्य रखो। (viii) चिंता कभी न करो, चिंतन करो।

( ) कहावत है—"अंधेरे को कोसने के बजाय छोटी-सी मोमबत्ती जलाना बेहतर है।" इसी तरह अपनी मुश्किलों के बारे में गुस्सा करने या विचलित होने के बजाय यह बेहतर है कि हम शांत बैठकर उनके कारणों पर गौर से विश्लेषण करें।

( ) जब अपना मन वासनाओं से खाली हो जाता है तो वह प्रसन्नता से खिल उठता है और वही मन 'सुमन' बन जाता है। जब हम अपने अहंकार की पराजय मान लेते हैं तब मन 'हार' बन जाता है। इन दोनों (सुमन और हार) को लेकर हम अपने इष्ट के पास पहुंचते हैं तो हमारा मन 'नमन' हो जाता है। नमन का अर्थ अहंकार रहित और मन रहित होना है। अमन=समाधि।

( ) प्रकृति में दुख नहीं है, न दुख हमारी आत्मा में है। दुख है हमारी नासमझी में। अतः समझ ठीक कर लें, बुद्धि को दुरुस्त कर लें, इच्छा-वासना को शमित कर लें फिर जीवन में सुख ही सुख है।

( ) परम पूज्य गुरुदेव श्री अभिलाष साहेब जी का प्रथम शास्त्र है—निर्मोहता, फिर निर्भयता, निर्लिप्तता और निर्मानता। अर्थात जिसने जीवन में मोह का त्याग कर दिया, भयरहित हो गया और सभी जगहों से अनासक्त हो जाता है वह जीते जी मुक्त (निर्मान) हो जाता है।

( ) जैसे अग्नि में घी डालने से वह बुझने के बजाय और जोरों से धधकती है ऐसे ही मन को भोगों की खुराक देने से उनकी वासना दिन प्रतिदिन बढ़ती ही जाती है किन्तु जल डालने से आग बुझ जाती है। इसी प्रकार भोगों का त्याग करने से उसका अध्यास घटता जाता है। अतः भोगों को त्यागकर ही जीता जा सकता है, भोगकर नहीं।

( ) गाड़ी में ब्रेक न हो, घोड़ा में लगाम न हो, ऊंट में नकेल न हो और हाथीवान के हाथ में अंकुश न हो तो सवार की क्या दशा होगी सहज समझा जा सकता है। ऐसे ही जिसके मन, इन्द्रियां और बुद्धि सही दिशा में न लगी हों, संयमित न हों उसकी क्या दशा होगी? ये तीनों ही रात-दिन जीव को उठाकर गंदी नाली में पटकते रहेंगे। अतः संयम रूपी ब्रेक मजबूत रखें।

( ) समता का पत्थर, निष्ठा की सीमेंट और श्रद्धा-उदारता रूपी पानी से हमारी साधना का भवन मजबूत होता है।

( ) कुत्ता जब सूखी हड्डी को चूसने लगता है तो कुछ समय बाद उसे हड्डी में से खून का स्वाद आने लगता है। वह समझता है कि हड्डी में से यह खून आ रहा है। उस मूर्ख को कौन समझायेगा कि यह उसका खुद का खून है। मनुष्य की हालत भी ऐसी ही है। ऊर्जा को नष्ट करने में ही वह सुखानुभूति करता रहता है। उसकी समझ में यह नहीं आता कि ऊर्जा को संग्रहित करके मोक्ष (परमात्मा) तक को पाया जा सकता है।

( ) व्यक्ति का अपनी देह से इतना गहरा सम्बन्ध हो गया है कि उसे बाहरी दाग ही दिखाई देते हैं। कई लोग अपने कपड़े में लगे दाग को मिटाने में ही लगे रहते हैं। कुछ लोगों के शरीर में सफेद दाग की बीमारी हो जाती है उसे ठीक कराने के लिए वे पूरी दुनिया घूम आते हैं, मगर, आत्मा के दागों पर उनकी नजर ही नहीं पड़ती। सच्चा साधक वह है, जो जड़ और चेतन के अंतर को पहचान कर निरंतर चेतन में रमण करता है।

परमार्थ पथ

सद्गुरु ज्ञान ठिकाना है

अपने हृदय में झांककर देखो, शरीर-संसार में क्या कहीं सुखाभास शेष है? सुख तो कहीं जड़दृश्य में है नहीं, अविवेक-वश सुखाभास होता है। क्या तुम्हारे मन में कहीं जड़दृश्य में सुखाभास होता है? सुखाभास का अर्थ है सुख का भ्रम। सुखाभास की जड़ है अविद्या। स्वरूपज्ञान और वैराग्य के अभ्यास से अविद्या नष्ट होती है और अविद्या के नष्ट होने से सुखाभास नष्ट होता है। सुखाभास पूर्ण नष्ट हो जाने से जीव अपने स्वरूप में स्थित होता है। यही मोक्ष है। इस नश्वर, अनात्म, गंदे संसार में तुम्हें क्या मिलेगा? सावधान हो जाओ, संसार से उपरत होकर स्वस्वरूप में रत होओ।

* * *

बोधवान के लिए सोचने का विषय निजस्वरूप है, आत्मा है, चर्चा का विषय भी यही है, साथ-साथ संसार की परिवर्तनशीलता, नश्वरता। जाग्रत में जिसके प्रति दृढ़ अनुराग होगा, वही संस्कार स्वप्न में रहेगा तथा सुषुप्ति में उसी का बीज रहेगा। देह से लेकर समस्त उपलब्धि छूटने वाली एवं नश्वर है और अपना आत्म-अस्तित्व नित्य स्थिर और स्व है। चारों तरफ नजर डालने पर जड़-दृश्य में कहीं सार नहीं दिखता। सांसारिक वार्ताएं व्यर्थ हैं। मुख्य व्यवहार की वार्ता ठीक है, किंतु व्यर्थ बात करके समय न बरबाद करे। अधिकतम मौन और संकल्पहीन होकर जीना चाहिए। उत्कट वैराग्य तथा उपरामता हर क्षण आवश्यक है।

* * *

सबसे हारे बिना, सबसे छोटा और नीचा हुए बिना, अपने अहंकार को पूरा मारे बिना कोई गहरी शांति नहीं पा सकता है। अपने को लोगों का गुरु मानने की मूर्खता कभी न करना। अपने को मुखिया मत मानना, अपितु सेवक मानना। सबके पास अहंकार का अंबार है। तुम स्वयं अपना अहंकार मारो। दूसरे का अहंकार तुम्हें कष्ट नहीं दे सकता। तुम्हारा अहंकार तुम्हें कष्ट देगा। सारा संयोग क्षणिक है, उसमें अनुकूलता या प्रतिकूलता पाकर राग-द्वेष के उद्वेग में न उलझना। कहीं न उलझना, अपितु अपना सिर झुकाये हुए विनयावनत होकर निकल जाना शांतिपथ है। निज स्वरूप पर सदैव लक्ष्य रखना, आत्मा में निरंतर रमना, यही सच्ची साधना है। आज-कल में शरीर लुप्त हो जायेगा।

* * *

केवल तुम्हारा मन सब समय पूर्ण स्वस्थ रहना चाहिए; फिर वाणी अपने आप स्वस्थ रहेगी और कर्म स्वस्थ रहेंगे। जिनके मन, वाणी तथा कर्म ठीक हैं, उनकी हानि कर सकने वाला कोई नहीं है। बस, इतनी साधना काफी है। मैं स्वयं को जानता हूं, तो कोई मुझे जाने या न जाने, कोई अंतर नहीं पड़ता। यदि मैं स्वयं को निरंतर प्राप्त हूं, तो और कुछ प्राप्त हो या न प्राप्त हो, कुछ अड़चन नहीं। जो अपने मन-इंद्रियों को निरंतर सम्हाले रखता है और अपने आप में सब समय संतुष्ट रहता है, वह कृतार्थ है। इस छूटने वाले संसार में क्या रखा है! अपने को कहीं भी राग-द्वेष में न उलझाओ।

* * *

बाहर समस्या नहीं है। समस्या है तुम्हारे मन की कामनाएं, अहंताएं और अविवेक। इनको मिटा दो और जीवन पर्यंत इनसे सावधान रहकर इनसे बचे रहने के प्रयत्न में रहो, यही मुक्ति का पथ है। कामनाहीन होकर रहने वाले के लिए कौन-सी समस्या है! कामनाहीन ही अपना स्वरूप है। तुम्हारा स्वरूप जैसा है वैसा तुम सब समय रहने का प्रयत्न रखो, यही सच्ची साधना है। तुम्हारा प्रयोजन किसी से नहीं है। तुम अपने आप में पूर्ण हो। यह शरीर-वास है। इसमें रहकर मन-इंद्रियों के झरोखों से संसार को देखते-जानते हो और इसको लेकर नाना कल्पना करते हो। आज-कल में शरीर छूट जाने पर सब प्रपंच शून्य।

* * *

यह शारीरिक वास सच लग रहा है, परंतु देखते-देखते एक दिन पूरा झूठ हो जायेगा। परंतु मैं परम सत हूं। सब समय हूं। आत्मा तो अमर है, अक्षीण है, ध्रुव है, क्लेशरहित है, परमशांत है! जीवन में मिलने वाले

प्राणी-पदार्थों के झोंके अंततः व्यर्थ हैं। तुम धीरवान होकर सब सहते रहो और सारा संबंध झूठ समझकर मोह-शोक से रहित रहो। सदैव अंतर्मुख रहना जीवन का फल है। बाहर जो कुछ मिलता-जुलता है, सब क्षणिक है। स्थिर तत्त्व तो मैं स्वयं हूं। हर समय प्रपंचशून्य की स्थिति का बोध होना चाहिए। हमारे साथ कुछ रहने वाला नहीं है। मैं ही मेरा धन है। आत्मशांति में डूबे रहना सरल है, बशर्ते अहंता-ममता और जगत-कामना का त्याग करके रहा जाये। दुनिया के पीछे मत भागो। वह पकड़ में नहीं आयेगी।

* * *

जीव और देह की पूर्ण भिन्नता का बोध और गहरा चिंतन होते जाने से देहाभिमान छूटकर स्वरूपस्थिति दृढ़ होती है। देह के तादात्म्य से जड़ाध्यास का नशा होता है। हर मनुष्य सब समय नशा में डूबा रहता है। इसीलिए वह अन्यथा सोचता, बोलता तथा करता है। जितना जड़ाध्यास का नशा साधना से क्षीण होता है, उतना वह सुव्यवस्थित होता है। इसलिए निरंतर देह से भिन्न आत्म-अस्तित्व का बोध बना रहना चाहिए और इसी का अभ्यास करना चाहिए। यह सारा संसार तामस-गुण से भरा है। राजस-गुण वाले उससे कम हैं। सातस-गुण वाले तो बहुत कम हैं। तुम ऐसे संसार में जी रहे हो, जहां उन्मादियों का जमघट है। सहन, धीरज, क्षमा, संतोष में सुख है।

* * *

जिन मनुष्यों के बीच में तुम रह रहे हो, उनमें रजोप्रधान, तमोप्रधान, सतोप्रधान लोग हैं। कुछ लोग अपने लक्ष्य के प्रति समर्पित हैं, किंतु कुछ लोग उसके प्रति शिथिल हैं। कुछ लोग देह की आरामतलबी के पक्षधर तथा उसकी सुख-सुविधा के जुगाड़ वाले हैं और कुछ लोग त्यागप्रधान बुद्धि वाले हैं, अहंप्रधान और विनम्रताप्रधान लोग हैं। शुद्ध शांति प्राप्ति की तीव्र अभिलाषा वाले विरल हैं, शेष सामान्य सदाचार में संतुष्ट हैं। उन्हें तीव्र वैराग्य और साधना में समर्पित होने की चिंता नहीं है। उक्त स्थिति को दीर्घकाल से देखा जाता है। अतएव दूसरों का हितचिंतन रखते हुए अपने कल्याण-साधना में तीव्ररूप से लगे रहना चाहिए।

* * *

जिसका रजोगुण शांत हो गया है, जिसके मन का मोह मिट गया है, जो सदैव विदेह को देखता है, वह परम शांति में विहरता है। याद रखो, किसी बात को लेकर कभी क्षुब्ध मत होना। यह सारा संबंध क्षणिक है। जो आज सामने है वह रहने वाला नहीं है। तुम्हारा स्थिर संबंध केवल तुमसे है। अतएव तुम अपने को अपने में समाहित करो। स्वयं में रमने वाला संसार-सागर से पार है। देह क्षणिक है, अतएव देह का व्यवहार क्षणिक है। देह-संबंध में मिले हुए प्राणी-पदार्थों का संयोग क्षणिक है। जहां सारा संबंध ही क्षणिक है, वहां किस बात को लेकर मोह-शोक! निर्मल मन, प्रशांत चित्त, स्वरूप-रति, आत्मतृप्ति जीवन का फल है।

* * *

जीवन में कोई चिल्ल-पों न हो, शिकवा-शिकायत न हो, परनिंदा, परदोष दर्शन, कटुवचन, रीझ-खीझ न हो। चित्त प्रशांत हो। संसार हर क्षण छूट रहा है। एक दिन पूरा छूट जायेगा। रह जायेगा केवल मेरा अस्तित्व जो निर्मल, असंग चेतन है। साधक को चाहिए कि वह अपने माने हुए शरीर को हर समय छुटा हुआ अनुभव करे। मेरा अस्तित्व तो चेतन है। स्व-स्वरूप ज्ञानतत्त्व है जो कभी छूटने वाला नहीं है। शरीर तो ऊपर की मिट्टी की पपड़ी है। शरीर का अध्यास जो अपने मन में जम गया है उसे विवेक से उच्छिन्न कर सब समय स्वस्वरूप में विराजना चाहिए। यही जीवन की सार्थकता है।

* * *

शरीर छूटने में कोई कठिनता नहीं होती है। यह तो सहज है। सदैव परमानंद में जीना हमारी साधना है। कहीं जड़ दृश्य में मोह न करना परमानंद में जीने का रास्ता है। जहां कुछ स्थिर नहीं है, वहां किस वस्तु एवं व्यक्ति में मन बांधा जाय। मैं स्वयं स्वरूप में सदैव स्थिर हूं, अतएव आत्मा में ही मन बांधना चाहिए। निरंतर आत्म-स्मरण, आत्म-रमण, आत्म-लीनता, आत्माराम रहना सच्ची समझदारी और सच्चा ज्ञान है।

क्रांतिकारी समाज सुधारक और संत : संत रविदास

लेखक—श्री विजय चितौरी

मध्ययुगीन संतों में संत रैदास या रविदास का विशिष्ट स्थान है। निम्न वर्ग में उत्पन्न होकर भी अपनी साधना, उत्तम जीवन शैली और समाज सुधार के कारण उन्होंने सम्पूर्ण भारत में महान ख्याति और सम्मान अर्जित किया। आज भी संत रैदास के लाखों अनुयायी देशभर में फैले हुए हैं। महात्मा कबीर की भांति ही रैदास के जीवन परिचय के संबंध में बड़ा मतभेद है। ये अनेक नामों से भी जाने जाते हैं। रैदास के अलावा उन्हें रविदास, रायदास, रुद्रदास, रुईदास, रयिदास, रोहीदास, रमादास, रामदास तथा हरिदास आदि नामों से भी पुकारा गया। जो व्यक्ति देश के अलग-अलग हिस्सों में इतने नामों से जाना जाता हो उसकी लोकप्रियता का अंदाजा सहज ही लगाया जा सकता है।

जीवन वृत्त

संत रैदास की जन्म तिथि, जन्म स्थान, माता-पिता के संबंध में कोई प्रामाणिक जानकारी नहीं मिलती। हां उन्होंने अपने पदों में अपने को बार-बार चमार (चर्मकार) जाति में उत्पन्न हुआ बताया है। धन्ना भगत और मीराबाई को संत रैदास का समकालीन माना जाता है। मीरा ने रैदास को अपने गुरु के रूप में याद किया है।

गुरु मिलिया रैदास जी, दीन्हीं ज्ञान की गुटकी।

(मीराबाई की पदावली, हि.सा.सं. (पद)

कुछ अन्य विद्वान संत रैदास को कबीर और रामानन्द का समकालीन मानते हैं। भक्तमाल में कबीर और रैदास दोनों को रामानंद का शिष्य बताया गया है।

'निरगुन को गुन देखो, आई, देही सहित कबीर सिधाई।'

संत रैदास के जन्म स्थान के संबंध में भी विद्वान एकमत नहीं हैं। लेकिन ज्यादातर मानते हैं कि उनका जन्म काशी में हुआ था। संत रैदास ने अपनी रचनाओं में इसका संकेत भी दिया है—

काशी ढिग मांडुर स्थान, शूद्र वरण करत गुजराना।
मांडुर नगर लीन अवतारा रविदास शुभनाम हमारा

उपरोक्त पंक्तियों से स्पष्ट होता है कि बनारस के पास 'मांडुर' नामक स्थान पर संत रैदास का जन्म हुआ था। माण्डुर बनारस कैंट के पास स्थित 'मंडूर' ग्राम है जिसका प्राचीन नाम मडुवाडीह है। मंडूर में प्राचीन काल में चर्मकारों की बड़ी बस्ती भी थी। कुछ लोग काशी के गोपाल मंदिर को संत रैदास का जन्म स्थान मानते हैं।

संत रैदास के माता-पिता और परिवार के संबंध में भी कोई प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध नहीं है। भारतीय रविदासी महासभा तथा अधिकांश रविदासी गद्दी वाले उनके पिता का नाम 'रग्घू', मां का नाम 'धुरबनिया' तथा पत्नी का नाम 'लोणा' या 'लोना' माना है। ब्रिग्स ने भी रैदास की पत्नी का नाम 'लोना' बताया है। संत रविदास की विधिवत शिक्षा-दीक्षा नहीं हुई। उन्हें साधु-संतों के सत्संग, पर्यटन और साधना से ही ज्ञान की प्राप्ति हुई। यह बात अवश्य प्रमाणित है कि जीवन के प्रारम्भ में वे चर्मकार का काम करते थे। इसका उन्होंने स्वयं कई स्थानों पर उल्लेख किया है :

'चरमठा गांठि न जनई, लोग पठावैं पनही।'

संत रविदास की सादगी, सदाचारपूर्ण जीवन, भक्ति भावना और ज्ञान के कारण उनकी प्रसिद्धि बढ़ती गयी।

संत रैदास की निर्वाण तिथि की भी सही-सही जानकारी नहीं है। रविदासी सम्प्रदाय के लोग रैदास की निर्वाण तिथि चैत बदी चतुर्दशी मानते हैं। कुछ विद्वान रैदास की मृत्यु संवत् मानते हैं। 'मीरा स्मृति ग्रंथ' में उनका मृत्यु वर्ष संवत् माना जाता है।

संत रैदास की वाणी और चिन्तन

संत रैदास को भारतीय समाज में जो सम्मान और स्वीकार्यता मिली उसके पीछे उनका वह चिन्तन था जिसमें तत्कालीन परिस्थितियों और प्राचीन चिंतन का अद्‌भुत समन्वय था। राज्याश्रय में इस्लाम का प्रचार-प्रसार, सूफी संतों की समन्वय और निर्गुन उपासना पद्धति, पूर्ववर्ती विचारधाराओं जैसे शैव, वैष्णव, बौद्ध,

जैन आदि की पृष्ठभूमि में उन्हें समाज को एक नई दिशा देनी थी। यही नहीं समाज का एक बड़ा शूद्र वर्ग जो सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में हाशिये पर था को मूल धारा में लाने की चुनौती भी उनके सामने थी। सौभाग्य से रैदास के पूर्व रामानन्द तथा कबीर ने इस तरह की पृष्ठभूमि पहले ही तैयार कर दी थी। उनकी यह प्रसिद्ध वाणी 'जात-पांत पूछै नहिं कोई, हरि को भजै, सो हरि को होई' ने पहले ही शूद्रों के लिए धर्म क्षेत्र में प्रवेश का मार्ग प्रशस्त कर रखा था। संत रैदास के लिए भक्ति लौकिक और अलौकिक दोनों दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण थी। संत रैदास औपचारिक पूजा-अर्चना, कर्मकांड, बाह्याडम्बर, जप, तप, तीर्थ-यात्रा, धार्मिक ग्रंथों के पाठ को महत्त्व नहीं देते थे। भावविभोर होकर हरि का कीर्तन, नाम स्मरण ही उनकी साधना का मुख्य अंग था। इस संबंध में उनका पद इस प्रकार है—

दुधु त बछरै थनहु बिटारिओ, फूलु भंवरि जलु मीनि बिगारिओ।
माई गोबिन्द पूजा कहा ले चरावउ, उवरु न फूलु अनूपु न पावउ।

अर्थात दूध को तो बछड़े ने, फूल को भंवरे और पानी को मछली ने गंदा कर रखा है। ईश्वर की पूजा के लिए अन्य फूल कहां से लाऊं?

संत रैदास का एक दूसरा पद है जिसमें उन्होंने तपस्या, तीर्थयात्रा तथा भिन्न-भिन्न प्रकार के कर्मकांडों तथा आडम्बरों को व्यर्थ तथा अनावश्यक बताया है। पद इस प्रकार है—

कहा भयउ नाचै अरु गाये, कहा भयउ तप कीन्है।
कहा भयउ जा चरन पखालै, जउलौ परम तत्व नहीं चीन्हैं।
कहा भयउ जो मूंड मुंडाए, बहु तीरथ ब्रत कीन्हैं।
स्वामी दास भगत अरु सेवक, जउ परम ग्यान नहीं लीन्हैं।

भावार्थ है कि जिसने परम तत्त्व को ही नहीं पहचाना और परम ज्ञान को प्राप्त नहीं कर पाया, उसके तरह-तरह के कर्मकाण्ड और आडम्बर करने से क्या लाभ? उसे तो चाहिए कि अभिमान छोड़कर भक्ति करे।

संत रैदास का एक अन्य पद है जिसमें उन्होंने कर्मकांडों और औपचारिकता का विरोध किया है और आचरणगत पवित्रता का महत्त्व प्रतिपादित किया है। कविता लम्बी है जिसके कुछ अंश इस प्रकार हैं—

जे ओहु अठिसठि तीरथ नहावै। जे ओ दुआदस सिला पुजावै
जे ओहु कूप तटा दबावै। करै निन्द सभ विरथा जावै

संत रैदास ने साफ-साफ कहा है कि यदि कोई व्यक्ति अरसठ तीर्थों में स्नान करता है, द्वादस शिलाओं का पूजन करता है और कुआं खुदवाता है पर यदि उसका आचरण पवित्र नहीं है और वह साधु-संतों की निंदा में लगा रहता है तो वह नरक का भागी होगा। संत रैदास ने आगे कहा है कि सभी स्मृतियों का श्रवण करने, अनेक अन्न-सत्र आयोजित करने और भूमिदान करने का श्रेय प्राप्त करने से भी उसे कोई लाभ नहीं जिसका व्यक्तिगत आचरण पवित्र नहीं है। कहने का आशय है कि ये सभी अपने आप में अच्छी चीजें हैं पर पवित्रता उनसे भी श्रेष्ठ है। इस संबंध में संत रैदास का एक और पद है जो इस प्रकार है—

अंतरगति रांचे नहीं, बाहर करे उजास।
ते नर जमपुर जाहिंगे, भाषै संत रैदास

इससे संकेत मिलता है कि बाहरी औपचारिकताओं पर जोर देने, उनको महत्त्व देने से क्या लाभ यदि मनुष्य अपने आंतरिक गुणों के विकास में रुचि नहीं लेता।

संत रैदास सभी मनुष्यों को, चाहे वे किसी भी वर्ण के हों, समान मानते थे, छोटा-बड़ा नहीं। यही नहीं उनका विश्वास था कि जब तक जातिवाद का रोग समाप्त नहीं होता, मनुष्य एक नहीं हो सकते। उनकी इससे संबंधित कुछ वाणियां इस प्रकार हैं—

जब जनमें तउ सूदर थे, अरु थे अति अपवित्रा।
वरण करम सौं होत है, रैदास करौं जरु नित्त

जन्म के समय सभी व्यक्ति समान थे और अपवित्र थे। विभिन्न कार्यों के कारण ही भिन्न-भिन्न वर्ण बने। अपनी एक दूसरी वाणी में रैदास जी ने उन कार्यों का जिक्र किया है जिनके चलते मनुष्य ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य बनते हैं। पद इस प्रकार है—

काम-क्रोध-मद-लोभ तजि, जो करहि धरम की कार।
सोई ब्राह्मण जानिही, कह रैदास विचार
दीन दुःखी के हेत जउ, वारे अपनहु प्रान।
रैदास उह नर सूर कौ, सांचा छत्री जान।
सांचि हाटि बैठ कर, सौदा ऊंचा देई।
तरकड़ी तौले सांच की, रैदास वैस है सोई।

अर्थात जो काम-क्रोध-मद-लोभ छोड़ कर धर्म का काम करे वह ब्राह्मण, जो दीन-दुखियों के लिए अपना प्राण न्यौछावर कर सके, वह क्षत्रिय और जो सत्य के बाजार में बैठ कर सत्य का व्यापार करे वही वैश्य है।

संत रैदास के विचार में सभी मानव मूल रूप में एक समान हैं फिर वे बड़े-छोटे कैसे बने? इस संबंध में उनकी दो वाणियां नीचे दी जा रही हैं—

रैदास इकहि नूर सों, जिमि उपज्यों संसार।
ऊंच-नीच किस विध भये, ब्राह्मण, सूद, चमार।

एक ही ज्योति से ही सारा संसार पैदा हुआ, फिर ब्राह्मण, शूद्र, चमार छोटे-बड़े कैसे बने?

संत रैदास ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को एक ही जाति का मानते थे। यही नहीं उनका विश्वास था कि जब तक जाति समाप्त नहीं हो जाती, मनुष्य एक हो नहीं पायेंगे। इसके लिए जरूरी है कि जातीयता रूपी रोग, जो मनुष्यता को खाये जा रहा है, मिटे। उनकी वाणी है—

रैदास जाति मति पूछिए, का जात अरु पाति।
ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैस सूद, सभह इकाहि जाति
जांत पांत के फेर मंहि, उरुझि रह्यो सभ लोग।
मानुषता कूं खाई रह्यो, रैदास जात कउ रोग
जात जात में जाति है, ज्यों केलन के पात।
रैदास मानुष न जुड़ सके, जौ लौं जाति न जात

जिस प्रकार केले के तने के छिलके की एक परत के बाद दूसरी परत निकलती जाती है वही हालत जाति व्यवस्था की है—एक जाति में एक के बाद दूसरी उपजातियां। यह मनुष्य को छोटे-छोटे टुकड़ों में बांटे रखती है। मनुष्य एक धरातल पर तभी खड़ा हो सकता है जब जाति व्यवस्था ही समाप्त हो जाये।

संत रैदास ने जन्म पर आधारित जाति के स्थान पर कर्म पर आधारित जाति को मान्यता दी है। वे कहते हैं :—

जनम-जात कूं छांड़िकर, करनी जात परधान।
इहो वेद का धरम है, कह रैदास बखान

संत रैदास जितने बड़े भक्त थे उतने बड़े कवि भी थे। उनकी भाव-प्रवण निश्छल अनुभूति, सहज ढंग से अभिव्यक्ति पाकर एक उच्च कोटि की कलात्मक काव्य बन गयी। उनकी रचनाओं में जो उपमाएं मिलती हैं उनमें ताजगी तथा मौलिकता है, भाषा में ओज है। परिणामस्वरूप उनका काव्य सशक्त है और हृदय को स्पर्श करता है।

भक्ति काल के संतों में संत रैदास का विशिष्ट स्थान है। उन्होंने प्राचीन और तत्कालीन सभी साधना पद्धतियों का समन्वय करते हुए एक ऐसी विचारधारा प्रस्तुत की जिसमें ऊंच-नीच और बाह्याडंबरों का कोई स्थान नहीं है। अन्त्यज वर्ग में जन्म लेकर और जीवन में अनेक बार पंडितों द्वारा अपमानित किये जाने के बावजूद रैदास को अपने समय में किसी भी धार्मिक नेता से अधिक सम्मान मिला था। यही कारण है कि आज भी भारत का एक बड़ा समुदाय अपने को रैदास-पंथी कहने में गर्व का अनुभव करता है। इसके पीछे किसी जाति विशेष का आग्रह नहीं वरन् उनकी सर्वग्राह्य विचारधारा, व्यक्तित्व की महानता तथा विचार प्रकाशन की ग्रहणीय शैली ही प्रमुख कारण हैं। मध्यकाल में रैदास के महत्त्व और सम्मान का परिचय तत्कालीन अन्य साहित्यकारों की अभिव्यक्तियों में भी मिलता है। भले ही अभिव्यक्तियां व्यंग्य में या ईर्ष्यावश की गयी हों। तत्कालीन संस्कृत वांङ्मय में एक स्थल पर कहा गया है—

गता गीता नशं क्वचिदपि पुराणं व्यपगतम्।
विलीना स्मृत्यर्था निगमननिचयो दूरगतम्
इदानीं रैदास प्रभृतिवचनैर्मोक्ष पदवी।
तदेव जानीमो कलियुग तवैवेश महिमा

अर्थात आजकल गीता नष्ट हो गयी है, पुराणों का लोप हो गया है, स्मृतियों के अर्थ लुप्त हो गये हैं और वेद भुला दिये गये हैं। कारण यह है कि इस समय रैदास प्रभृति संतों के वचनों से ही लोग मोक्ष का मार्ग पकड़ रहे हैं। यह कलियुग की महिमा है।

उपर्युक्त पंक्तियां भले ही तथाकथित कर्मकांडी पंडितों ने पूर्वाग्रह में रैदास के विरुद्ध व्यंग्यपूर्वक लिखी हों, किन्तु इन पंक्तियों से रैदास का तत्कालीन प्रभाव अवश्य परिलक्षित हो रहा है।

वाणी की डगमगाहट—रहनी की अस्थिरता का परिणाम है

लेखिका—श्रीमती रजनीश

'वाणी' मन के भावों और विचारों को प्रकट करने का माध्यम है। जो शक्ति जितनी महत्त्वपूर्ण होती है, उसका दुरुपयोग उतना ही हानिकारक होता है। वचन-सा कोई धन नहीं है तो वचन-सा कोई शस्त्र भी नहीं है। मधुरवचन औषधि के समान है। मीठा वचन मानव-मन का 'साइक्लोजिकल ट्रीटमेंट' करता है। साथ ही कटु वचन मानव मन को बीमार बना देता है। वचनों की मिठास भी जांच-परख कर ग्रहण करनी चाहिए कहीं वह बनावटी तो नहीं।

"जो शब्द रसीले विषय भरे, वे शब्द तुम्हारे घातक हैं।
जितने मन को उलझन देवें, वे बंधन के दातक हैं "

(विवेक प्रकाश)

'वाणी' के विस्तार को समझने के लिए हम इसको तीन भागों में बांट सकते हैं—

. मानव मन के भाव

. भोजन और आचार-व्यवहार

. पारखी-बेपारखी की वाणी

मानव मन के भाव—मानव मन के भावों का उठना उसकी रहनी-गहनी व उसके संस्कारों पर निर्भर करता है। न जाने कितने जन्मों के शुभ कर्म एकत्रित होते हैं तब जाकर कहीं मानव के शुद्ध भाव बनते हैं। वैसे मनुष्य के मन में दोनों तरह के भाव उठते हैं। यदि मनुष्य की सात्त्विक प्रवृत्ति है, शुभ संस्कार हैं, हृदय में ज्ञान व विवेक की प्रधानता है तो निःसंदेह वह अशुद्ध भावों को सत्ता न देकर शुद्ध भावों को ही सत्ता देगा।

आदमी अपने भावों को अपने वचनों में नहीं दबा पाता। यदि बनावटी वचनों में दबा दिया तो उसकी बातों के स्वर उसके मन के भाव बता देते हैं।

बोली तौलि के बोलिए, समय पात्र लखि सांच।
बहु बोली के कारणे, दुखित भये ये पांच
तेहि के साथे तेउ दुखी, कीन जो ताहि सहाय।
याते बोली रोकिए, नहिं मुख जूता खाय
पेट न फूटत बिन कहे, कहे न लागत देर।
बोलत वचन विचारि के, समुझि सुफेर कुफेर

(विवेक प्रकाश)

वाणी निष्पक्ष, सधी हुई, तुली हुई और खरी व सत्य होनी चाहिए। यह तभी होता है जब रहनी शुद्ध और स्थिर होती है। मन के भाव व्यक्तित्व का आइना होते हैं। इस आइने से ही काफी हद तक मनुष्य की मनुष्यता एवं मूर्खता की पहचान हो जाती है। कुछ भाव तो 'नेचुरल' होते हैं और कुछ वातावरण से बनते हैं। लेकिन इन भावों को मथकर हमें शुद्ध भावों को ही प्राथमिकता देनी चाहिए। शुद्ध भावों से मन पवित्र होने लगता है और पवित्रता में ही सद्गुरुदेव विराजते हैं। जिसके हृदय में सद्गुरुदेव का वास होता है उसके हृदय में राग-द्वेष, ईर्ष्या, मलिनता इत्यादि के लिए कोई स्थान नहीं है। यदि ये क्षण-भर के लिए आ भी गये तो टिक नहीं पायेंगे। यदि रहनी व अभ्यास की निरंतरता, स्थिरता बनी रही तो एक दिन सारे मनोविकार लुप्त हो जायेंगे और जीव की अखंड, एकरस, स्वरूपस्थिति हो जायेगी।

भोजन और आचार-व्यवहार—वाणी को साधने में भोजन और आचार-व्यवहार का बहुत बड़ा योगदान है। भोजन और आचार-व्यवहार की अशुद्धि वाणी को डावांडोल बनाती है। कहते हैं कि "जैसा खाओगे अन्न वैसा होगा मन"। खाया हुआ अन्न तीन प्रकार का हो जाता है। उसका जो अत्यन्त स्थूल भाग होता है, वह मल हो जाता है; मध्यम भाग है, वह मांस हो जाता है; और जो अत्यन्त सूक्ष्म होता है, वह मन हो जाता है।

ऐसे 'आहार' से दूर रहा जाये जो आसक्ति, द्वेष और मोह उत्पन्न करता हो। गीता के अनुसार राजसिक और तामसिक आहार आसक्ति, द्वेष और मोह को जन्म देता है। सात्त्विक आहार मनुष्य की आसक्ति, द्वेष और मोह को कम करने में सहायक होता है। पोषण के लिए साधारणतया जो कुछ मुंह से ग्रहण किया जाता है,

केवल उसका ही मन पर प्रभाव नहीं पड़ता, बल्कि अन्य पेयों का भी मन पर विशेष असर पड़ता है। शराब और नशीली दवाइयां भी तो मुंह से ही ली जाती हैं और उनका मन पर प्रभाव प्रत्यक्ष है। मिश्री का शरबत और मदिरा पीने से मन पर कैसा अलग-अलग असर पड़ता है यह तो सहज ही देखा जा सकता है। मन पर नशीली दवाइयों का प्रभाव भी अच्छी तरह विदित ही है।

कई बार तो मैंने देखा है कि कई लोग ऐसे शब्दों का प्रयोग कर जाते हैं कि उन्हें खुद भी आभास नहीं होता कि वे क्या बोल रहे हैं जब तक उन्हें कोई चेता न दे। चेताने पर भी एक समस्या खड़ी हो जाती है। 'सुगरा मनुष्य' तो समझकर सुधार की प्रक्रिया में लग जाता है लेकिन 'नुगरा मनुष्य' गरम तवे पर पड़ी हुई पानी की बूंद की तरह तिलमिलाने लगता है।

सुगरा—"झोलियां भर रहे भाग्य वाले लाखों पतितों ने जीवन सम्हाले।"

नुगरा—"हो गई उल्टी मति करके अपनी क्षति, क्यों बना हंस से कागा, साथी सारे जागे तू न जागा।"

"संत मिले दो निर्णय कहिए, मूर्ख मिले मौन हो रहिए।"
"मूरख का मुख बिम्ब है, निकसत वचन भुवंग।
ताकी औषधि मौन है, विष नहिं व्याप्त अंग "

नाना प्रकार के लोगों का अलग-अलग तरह का व्यवहार देखने को मिलता है। सज्जन व्यक्ति की प्रवृत्ति सज्जन से मेल खाती है, दुर्जन व्यक्ति की प्रवृत्ति दुर्जन से मेल खाती है।

अब स्त्रियों के वार्तालाप को ही ले लीजिए। बे-सिर-पैर की बातें करती चली जायेंगी। अधिकतर स्त्रियों के पास वस्त्र और श्रृंगार प्रसाधनों के अलावा कोई बात ही नहीं होती। इतना कीमती समय कौड़ियों के भाव में खोये चली जा रही हैं। "जाकी जैसी मति ताकी वैसी बुद्धि"। एक बार चेतावनी दे दो। यदि माने तो भला न माने तो भी भला।

हम तो सबकी कही, मोको कोई न जान।
तब भी अच्छा अब भी अच्छा, जुग-जुग होऊं न आन।
(कबीर बीजक)

पारखी-बेपारखी की वाणी—जैसे सत्य का बोध कराने वाली वाणियां कल्याणकारी हैं वैसे भ्रम पैदा करने वाली वाणियां पतनकारी हैं। अतएव केवल वाणी के मोह में पड़कर आंख मूंदकर किसी की बातों को मानने की आवश्यकता नहीं है। इसलिए पारखी सन्त सदैव वाणीजाल से सावधान रहने की चेतावनी देते हैं। अब कोई कहेगा कि वे स्वयं वाणी क्यों बोलते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि 'बोले ते जग मारे, अनबोले ते कैसकहिं बनी है शब्दहिं कोई न विचारे।' (बीजक) ऐसा कहने वाले लोग सन्तों का भाव समझने का प्रयास करें। जैसे 'कांटे से कांटा निकालना' वैसे वाणी द्वारा ही वाणी की कसर-खोट को परखाना।

सद्गुरुदेव वाणी को साधने के नुस्खे बताते हैं जो इस प्रकार हैं—( ) बात बोलने में प्रिय हो ( ) सत्य हो, ( ) उसका सुनने वाला पात्र हो, ( ) समय अनुकूल हो, ( ) कहने की अपनी योग्यता हो, ( ) स्वयं संतुलित हो और ( ) कही जाने वाली बात पर पूर्ण विचार कर लिया गया हो। जिसके वचन में संयम नहीं है और हृदय में सच्चाई नहीं है, उसका साथ मत करो, वह बीच रास्ते में छोड़ देगा, गंतव्य तक नहीं पहुंचा सकता। जिसका मन चंचल है, वाणी चंचल है, वह गलत बातें करके सदैव दुख पाता है। अतः सद्गुरु समझाते हैं जीभ में संयम का ताला लगाओ और बहुत बोलना छोड़ दो। पारखी-विवेकी की संगत और गुरुमुख-निर्णय वचनों से ही अपना कल्याण है। 'कुसंग से अकेला भला'।

जिभ्या केरे बन्द दे, बहु बोलन निरुवार।
पारखी से संग करु, गुरुमुख शब्द विचार
(बीजक)

वैसे सत्पात्रों का अभाव सदा सबके सामने रहा है। केवल कबीर साहेब ही नहीं कहते हैं "जाको ढूंढत हौं फिरा, ताका परा दुकाल", किन्तु भतृहरि जी भी कहते हैं "किससे छंद-प्रबंध की बातें कही जायें, सुनने वाले नहीं हैं।" गोस्वामी तुलसीदास जी भी कहते हैं— 'तुलसी सठ की को सुने कलि कुचाल कर प्रीति।' परंतु इसका मतलब यह नहीं है कि संसार में सत्पात्र नहीं है।

कुछ लोगों में पात्रता के अंकुर होते हैं, परन्तु अवसर न पाने से उनका विकास नहीं होता। जब वे अच्छे विचार पाते हैं, तब पात्र बन जाते हैं। जो सत्पात्र होता है वह अपनी झोली भरता चला जाता है। उसको परख-कसौटी प्राप्त हो जाती है और वह एक न एक दिन मंजा हुआ पारखी बन जाता है। जो पारखी की बानी सो निर्पक्ष बानी, उसके आगे सब वाणी उड़ जाती हैं। जैसे सिंह की आवाज सुनते ही वन के सभी पशु-पक्षी, जानवर सब शांत व चुप हो जाते हैं।

"बोलत ही पहचानिए, साहू चोर का घाट।
अंतर घट की करनी, निकरे मुख की बाट " बीजक

आदमी वाणी के जाल में इतना उलझ गया है कि सही निर्णय करने की हिम्मत नहीं रखता। संसार के मनुष्यों ने असंख्य वाणियां कह डाली हैं और उन वाणियों में ही पूरा मानव-समाज डूबा है। उनमें सार वाणियां भी हैं और असार वाणियां भी। सभी ग्रन्थों में कुछ न कुछ सार अवश्य है। हर मनुष्य में चाहे वह कितना ही दुराचारी हो कुछ-न-कुछ सद्गुण अवश्य होते हैं। इसलिए "सार-सार को गहि लेय, थोथा देय उड़ाय "

वाणी की परख के लिए बीजक-वाणी की आवश्यकता है। बीजक-वाणी का अर्थ है—कसौटी वाणी। किसी भी वाणी को बिना उसकी परख किये नहीं स्वीकारना चाहिए। उस पर विचार अवश्य करना चाहिए। विचार शब्द बड़ा गंभीर है। केवल मीठे वचन विचारपूर्ण नहीं होते। कितने ही मीठे वचन झूठे होते हैं। केवल दूसरों को व्यर्थ खुश करने के लिए ही नहीं बल्कि ठगने के लिए भी होते हैं।

जिस दिन मान तथा सुखाध्यास बिल्कुल निकल जायेंगे; उस दिन हमें बहुत कम बोलने की आवश्यकता पड़ेगी।

"सतगुरु बिना ना समाय अमल निज नाम का।"
"बर्तन छोटा गुरू वस्तु घनेरी, उझल-उझल बह जा
आप पिवें औरों को पिलावें आपे में रहे हैं समा "
(रविदास जी)

जिस पर सद्गुरु देव की मोहर हो जाती है तब वह अपने निज स्वरूप में स्थित होने लगता है। जीव बहिर्मुखी से अन्तर्मुखी होने लगता है। जब गगरी अधूरी होती है तो छलकती रहती है लेकिन जब भरने लगती है तब उसमें से आवाज़ निकलनी बंद हो जाती है "वाक्य संयम वृत्ति" स्वयमेव आने लगती है। जो सोने में सुगंधवत शोभा देती है।

जीवन में परिस्थितियां कई बार ऐसी करवट बदलती हैं कि चुप रहने से काम नहीं बनता। अपनी बातों को समझाने के लिए बोलना पड़ता है। लेकिन जहां तक संभव हो अपनी 'वाणी' को 'वीणा' ही रहने दें 'बाण' न बनने दें। 'वीणा' हृदय की मसाज करता है जबकि 'बाण' हृदय को आघात पहुंचाता है।

जिभ्या केरे बन्द दे, बहु बोलन निरूवार।
पारखी से संग करू, गुरूमुख शब्द विचार।
(बीजक साखी)

बालू जैसी किरकिरी, ऊजल जैसी धूप।
ऐसी मीठी कुछ नहीं, जैसी मीठी चूप
(साखी ग्रंथ)

सारांशतः मनुष्यों की वाणी से उनके भीतर के संतत्व-असंतत्व, सरलता-कपट और योग्यता-अयोग्यता का पता चलता है। हम किसी के रूप-सौन्दर्य, उज्ज्वल वेष एवं बनावटी सभ्यता पर न भूल जायें; और किसी की कुरूपता, मैले वेष, गंवईपन को देखकर उसकी उपेक्षा न कर दें। सज्जन और संत तो तत्काल परख में आ जाते हैं; परन्तु छल-कपट पूर्ण आदमी को शीघ्र पहचानना कठिन होता है। फिर भी मनुष्य की बातों से उसके भीतर की भावनाओं का पता चलता है। सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब जी का यह 'शब्द' इस लेख को पूर्ण करता है—

अब हम बोलब वचन सम्हारी टेक
नहिं कटु कहब न निन्दा करिबे, नहिं देव केहु गारी।
कमी देखि नहिं हंसब कोई को, अपनी ओर निहारी
तर्क वितर्क न करब काहु से, हन्ता हृदय निकारी।
नहिं झुंझलाब न ईर्ष्या करिबे, नहिं बोलब दुतकारी
बोलब सत्य मधुर प्रिय निश्चल, अहंकार मद जारी।
शासन ममता भार त्यागि के, कर्तब शील विचारी
झूठ खर्स अश्लील बहिर्मुख, हार जीत तजि सारी।
अब 'अभिलाष' रहब पारख महं, अमृत सिन्धु सदारी

बीजक चिंतन

जीवन क्षणभंगुर है, शीघ्र भव-बन्धनों से मुक्ति लो

शब्द-

सुभागे केहि कारण लोभ लागे, रतन जन्म खोयो
पूर्वल जन्म भूमि कारण, बीज काहेक बोयो
बुन्द से जिन्ह पिण्ड सँजोयो, अग्नि कुण्ड रहाया
जब दश मास माता के गर्भे, बहुरी लागल माया
बारहु ते पुनि वृद्ध हुआ, होनहार सो हूवा
जब यम अइहैं बाँधि चलैं हैं, नैनन भरि भरि रोया
जीवन की जनि आशा राखो, काल धरे हैं श्वासा
बाजी है संसार कबीरा, चित चेति डारो पासा

शब्दार्थ—पूर्वल जन्म= पहले के जन्म। भूमि= आधार। कारण= बीज-वासना। बीज= वासना। बुन्द= वीर्य। पिण्ड= स्थूल शरीर। सँजोयो= संजोना, सजाना, एकत्र करना, पूरा करना, संपादित करना। अग्नि कुण्ड= माता की जठराग्नि। यम= मृत्यु। बाजी= खेल, जुआ का खेल। पासा= चौसर खेल में फेंका जाने वाला वह चौपहला लंबोतरा हड्डी या लकड़ी का बना टुकड़ा जिस पर बिंदियां बनी होती हैं।

भावार्थ—हे सौभाग्यशाली मानव! किस प्रयोजन से तुम सांसारिक विषयों के प्रलोभन में फंसकर अपने रत्नतुल्य जन्म को खो रहे हो? इस जन्म के आधार एवं कारण पहले जन्म के वासना-बीज हैं, अब उन्हीं वासना-बीजों को पुनः क्यों बो रहे हो? जिन वासना-बीजों ने जीव को गर्भ में ले जाकर रज-वीर्य की बूंदों से लेकर स्थूल देह का संपादन किया और माता के पेटरूप अग्नि-कुण्ड में उसे पकाता रहा, इस प्रकार दस महीने माता के पेट में रहकर जब पैदा हुआ तब तू मायारूपी उन्हीं विषय-वासनाओं में पुनः फंस गया - तू धीरे-धीरे बालक से जवान होकर थोड़े दिनों में बूढ़ा हो गया और तेरे अविवेक के कारण जो होना था वह हो गया—मोह-माया का बंधन। परन्तु समझ ले, कि जब मृत्यु आयेगी तब तुझे बांधकर ले चलेगी और तू नेत्रों में आंसू भर-भरकर रोयेगा - इस जिन्दगी के लिए बड़ी लंबी आशा न रखो कि यह बहुत दिनों तक बनी रहेगी। मृत्यु तुम्हारी सांस-डोरी को पकड़कर अपनी ओर निरंतर खींच रही है, आज मरो कि कल हे लोगो, यह समझ लो कि यह जिन्दगी एक जुआ का खेल है; अतः मन में सावधान होकर पासा फेंको "जनम जुआ मत हार।"

व्याख्या—मानव-शरीर विवेक-साधनसंपन्न है, इसलिए जिस जीव को मानव-शरीर प्राप्त है वह सौभाग्यशाली है। वह विषय-वासनाओं के सारे भव-बंधनों को तोड़कर इसी जीवन में कृतार्थ हो सकता है। परन्तु दुख की बात यह है कि वह जहां आकर अपने सारे बंधन काट सकता है वहीं वह नये-नये बंधन बनाता है। मानव-शरीर ज्यादा समझदारी की जगह है। इसलिए यहां बंधन भी बनाये जा सकते हैं तथा बंधन तोड़े भी जा सकते हैं। जीव को दुख इष्ट नहीं है। बंधनों में जीव को दुख मिलते हैं, इसलिए समझदारी की बात यह है कि हम बंधन बनायें न, किन्तु उन्हें समाप्त करें।

सद्गुरु करुणाविगलित होकर कहते हैं कि हे सौभाग्यशाली, तू किस प्रयोजन की सिद्धि के लिए सांसारिक विषयों के मोह में फंसकर अपना रत्नतुल्य जीवन बरबाद कर रहा है! सपने में मिले हुए इन प्राणी-पदार्थों से तू अपना क्या समाधान चाहता है? जरा ठहरकर सोच, इनसे तुझे क्या मिलने वाला है? जिस मन और इंद्रियों की चंचलता को तू सुख मानता है, वही तेरे गले की फांसी है। संसार के प्राणी-पदार्थों से तुझे केवल मन और इन्द्रियों की खुजलाहट मिल सकती है, जो सारी पीड़ाओं की जननी है। अंत में जीव के साथ कुछ नहीं है। यदि उसने अपने आप को माया-मोह में उलझाया है तो उसके फल में उसे केवल बंधनों की प्राप्ति होती है। यदि हम अपने समय और शक्ति को विषयों की उलझन में लगाते हैं तो रत्नतुल्य जीवन को मानो व्यर्थ में बरबाद कर रहे हैं और व्यर्थ ही नहीं, अपने गले में काल की फांसी लगा रहे हैं।

हमारे इस देह-बंधन के कारण हैं पहले जन्म के संस्कार एवं विषय वासनाएं। यह जीव संसार की

वासनाओं में बंधकर ही जन्म-मरण के घटीयंत्र में घूमता है। "पूर्वल जन्म भूमि कारण" आज के हमारे जन्म की भूमिका, आधार एवं कारण पूर्वल-जन्म के कर्म-संस्कार हैं, वासनाएं हैं। साहेब कहते हैं "बीज काहेक बोयो" अब पुनः वही बीज क्यों बो रहे हो? जो वासनाएं तुम्हें जन्म-मरण में भटकाती हैं उन्हीं का संग्रह क्यों कर रहे हो? इस प्रकार कबीर साहेब पुनर्जन्म को दृढ़ता से मान रहे हैं। वे पूर्व भारतीय परंपरानुसार मान रहे हैं कि जीव विषय-वासनाओं में फंसकर जन्म-मरण के चक्कर में पड़ा रहता है। जब यह विषय-वासनाओं को सर्वथा छोड़ देता है और अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है तब जन्म-मरण के चक्कर से मुक्त हो जाता है। व्यवहार में देखा जाता है कि आदमी वहीं जाता है जहां उसकी वासना लगी रहती है। जहां उसकी वासना नहीं, आकर्षण नहीं, वहां वह नहीं जाता। इस प्रमाण से जब जीव सारी वासनाएं छोड़ देता है और सभी प्रकार के मोह समाप्त कर देता है तब उसकी स्थिति अपने आप में हो जाती है। यही छुटकारा है।

"बुन्द से जिन्ह पिण्ड सँजोयो, अग्नि कुण्ड रहाया।" जो बुन्द से पिण्ड बनाने में कारण बनते हैं, जिन कारणों से रज-वीर्य के छोटे कतरे से स्थूल शरीर का निर्माण होता है, वे पूर्वजन्म के कर्म संस्कार हैं, विषय-वासना एवं कर्म-बीज हैं। ये पूर्वजन्म के संस्कार ही मानो गर्भवास में पिंड को संजोते हैं, संवारते एवं संपादित करते हैं। नौ-दस महीने माता की गर्भाग्नि में बच्चे का शरीर पकता है। फिर वह गर्भ से बाहर आता है। बाहर आते ही उसे पुनः माया लग जाती है। वह माता को देखता है। उसमें उसकी ममता बनती है। फिर माता द्वारा धीरे-धीरे संसार के अन्य लोगों का परिचय प्राप्त करता है। माता-पिता, भाई-बंधु द्वारा उसे राग-द्वेष का पाठ पढ़ाया जाता है। मैनावती तथा मदालसा-जैसी माता, उद्दालक-जैसा पिता, याज्ञवल्क्य-जैसा पति, चूडाला-जैसी पत्नी लोगों को कहां मिलते हैं? मैनावती ने अपने पुत्र गोपीचन्द को वैराग्य का उपदेश देकर उसे संन्यासी बना दिया था। मदालसा ने अपने बच्चों को लोरी में ही बताया था कि तुम देह नहीं अमर आत्मा हो, शुद्ध-बुद्ध हो। उद्दालक ने अपने पुत्र श्वेतकेतु को आत्मज्ञान का उपदेश दिया था 'तत्त्वमसि श्वेतकेतो'। याज्ञवल्क्य ने संन्यास लेने के पूर्व अपनी पत्नी मैत्रेयी को आत्मज्ञान दिया था 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः'। चूडाला ने अपने पति शिखध्वज को आत्मज्ञान की तरफ प्रेरित किया था।

संसार के लोग माता, पिता, भाई, भगिनी, भाभी, मित्र सब मिलकर बच्चे को देहाभिमान, संसारासक्ति, माया-मोह एवं विषय-वासना का पाठ पढ़ाते हैं। बचपन से ही मनुष्य की नस-नस में संसारासक्ति का विष व्याप्त होने लगता है। तरुणाई आते-आते वह विषय-वासनाओं में बदहवास हो जाता है। वह भोगों को जीवनलाभ समझता है। वह भोगों के लिए न्याय-अन्याय सब कुछ करने के लिए तैयार रहता है। उसके जीवन में निरंतर गलत आदतें एवं दुर्गुणों का जहर इकट्ठा होता जाता है। फिर प्रौढ़ अवस्था आ जाती है। पत्नी, बच्चे एवं परिवार की चिंता में उसका चित्त चाक बना रहता है। इसी सोच, फिक्र एवं प्रयत्न में उसके दिन बीतते जाते हैं और धीरे-धीरे वह बूढ़ा हो जाता है। "बारहु ते पुनि वृद्ध हुआ, होनहार सो हूवा।" आदमी बालक से देखते-देखते बूढ़ा हो गया। जो उसका होनहार था वह हो गया। उसका क्या होनहार था? संसार की उलझनों में उलझकर अशांत हो जाना। यहां होनहार का मतलब कोई दैवी प्रकोप नहीं है, किन्तु मनुष्य का अपना अज्ञान है।

"जब यम अइहैं बाँधि चलैं हैं, नैनन भरि-भरि रोया।" शरीर तथा संसार के मोह में आकंठ डूबे हुए आदमी की जब मौत निकट आती है, तब वह बिलख-बिलखकर रोता है। वह आज तक जिसको अपना मान रखा था वह सब सदैव के लिए छूट रहा है। वह उसी प्रकार व्याकुल हो जाता है जिस प्रकार मछली को पानी में से निकालकर जमीन पर रख दिया गया हो और वह तड़पती हो। मोही मनुष्य इसलिए व्याकुल होता है कि

. बच्चों को सुलाते समय गाने के गीत को 'लोरी' कहते हैं।

. मदालसा, मार्कंडेय पुराण।
. उद्दालक, छांदोग्य उपनिषद्, छठां प्रपाठक।
. याज्ञवल्क्य, बृहदारण्यक उपनिषद्। दूसरा अध्याय, चौथा ब्राह्मण।
. चूडाला, योगवासिष्ठ।

उसने जिसे अपना मान रखा था वह सब छूट रहा है और आध्यात्मिक एवं धार्मिक कमाई न होने से आगे अंधकार है। जिसने भी सांसारिकता में विश्वास किया वह जीवन में धोखा खाया। संसार के मोह में धोखा खाने के अलावा कुछ है ही नहीं। यहां चाहे जितना राज-काज, प्राणी-पदार्थों का संग्रह हो जाये, सबको छोड़कर अकेले जाना है। हम इनमें आसक्त होकर अपने गले की फांसी ही बनाते हैं।

"जीवन की जनि आशा राखो, काल धरे हैं श्वासा।" वैराग्यप्रवर सद्गुरु कबीर हमें सावधान करते हैं कि जिंदगी की आशा मत रखो कि यह अभी बनी रहेगी। इसके जाते देर नहीं लगती। कितने आदमी बिस्तर पर सोते हैं और सोये ही रह जाते हैं। कितने बैठे थे और बैठे रह गये। कितने चलते-चलते गिरकर समाप्त हो जाते हैं। लोहे-लक्कड़ की चीजों की तो कुछ मियाद भी है, इस जिन्दगी की तो कुछ भी मियाद नहीं है। तुम्हारी सांसरूपी डोरी को मौत अपने हाथों में पकड़ रखी है। वह हर समय तुम्हें अपनी तरफ खींचती है। तुम उससे भागकर बच नहीं सकते हो। तुम अवधि से ज्यादा रह नहीं सकते हो। अवधि का भी तुम्हें पहले से पता नहीं चल सकता है। अतएव जीने की आशा छोड़ दो। जितने क्षण तुम इस जीवन में हो, वासनाओं के त्याग करने में प्रयत्न करो। जीवन रहते-रहते यहां के सब प्रकार के मोह से मुक्त हो जाओ। देह छोड़ने के पहले संसार के राग-द्वेष छोड़ दो। बंधकर संसार से मत जाओ, किन्तु मुक्त होकर जाओ।

"बाजी है संसारा कबीरा, चित चेति डारो पासा।" हे बंधुओ! इस संसार में यह जीवन तो जुआ का खेल है। इस खेल में अधिकतम लोग अपनी बाजी हार-हारकर यहां से जाते हैं। जुआ में हारे युधिष्ठिर की-सी दशा यहां सबकी है। कोई बिरला ही यहां से जीतकर जाता है। सद्गुरु कहते हैं—"चित चेति डारो पासा।" मन में सावधान होकर पासा फेंको। कुछ जीतने के लिए, पाने के लिए ही तो पासा फेंका जाता है। यहां क्या पाओगे? जरा सोचो कि तुम्हें संसार से क्या मिलने वाला है? यहां तो जो कुछ मिलता है वह छूट जाता है। यहां बन्धनों का मिलना हार है तथा मोक्ष मिलना जीत है। जो संसार में उलझकर गया वह जीवन-जुआ हार गया और जो सुलझकर, शांत एवं संतुलित होकर गया, वह जीवन-जुआ को जीतकर गया। इसलिए "चित चेति डारो पासा" बहुत सावधान होकर दावं खेलो। यहां बहुत सजग होकर जिंदगी बिताओ। यहां कहीं राग किये तो हार गये, द्वेष किये तो हार गये, काम-क्रोध, मोह, वैर, शोक, संताप में उलझ गये तो हार गये। इस संसार में जीवन की बाजी वही मानो जीत लिया जो मन की समस्त ग्रन्थियों, समस्त वासनाओं को तोड़कर अपने आपा को सबसे मुक्त कर लिया।

इस शब्द में शुरू से ही सद्गुरु ने यही कहा है कि हे सौभाग्यशाली मानव! तू किस प्रलोभन में पड़कर अपने आपा को संसार में उलझा रहा है! ये संसार की वासनाएं ही तुम्हें जीवन में तथा जन्मांतरों में नचा रही हैं। इन्हें छोड़ो और सबसे मुक्त हो जाओ।

आत्मा सोई हो तो धर्म कैसे जागे?

लेखक—सुश्री निर्मला भुराड़िया

ईश्वर एक विश्वास है जिसके सहारे अधिकांश लोग जीते हैं। हमसे ऊपर कोई है यह अवधारणा इंसान के अहं को गलाती है। धर्म पहले-पहल अस्तित्व में क्यों आया होगा? शांति और करुणा के लिए ही न! भक्ति सिर्फ समर्पण का दूसरा रूप ही रहा होगा। पूजा और ध्यान निश्चित ही दिव्य आभास को पाने के मार्ग रहे होंगे। मगर आज क्या मनुष्य शर्तिया यह कह सकता है कि धर्म सिर्फ और सिर्फ हमारी आत्मा के सुकून के लिए है? नहीं। धर्म में दुनियाभर की राजनीति घुस आई है; भक्ति में पाखंड, पूजा में अंधविश्वास, कर्मकांडों का ऐसा बोलबाला है कि इसमें अध्यात्म ढूंढना मुश्किल काम हो गया है। बहुत थोड़े

लोग हैं जो आध्यात्मिक आनंद में अपनी पूजा, अपना ईश्वर और मनुष्यता में अपना धर्म देख पाते हैं। जो अपने को आस्तिक कहते हैं उनमें ईश्वर के प्रति प्रेम के बजाय एक अज्ञात सत्ता के प्रति भय अधिक दिखाई देता है। लगता है लोग विश्वास ही है आस्था का आधार के बजाए, 'भय बिनु होय न प्रीति' के हामी हैं।

वैसे तो अपने आसपास फैली अंधश्रद्धा, रूढ़िवाद, कर्मकांड के हम रोज किसी-न-किसी रूप में दर्शन करते ही रहते हैं मगर फिलहाल उपरोक्त विचार आये एक मन्दिर में घी के चढ़ावे वाला समाचार पढ़कर। इस मंदिर में अखंड ज्योति जलती है, इस हेतु भक्तों ने इतना घी चढ़ाया है और चढ़ा रहे हैं कि यहां घी के कुएं बनाने पड़े। और अब शुद्ध घी से नौ कुएं भर गये हैं। शुद्ध घी...! भारतीय परंपरा में इसे स्वाद और पौष्टिकता का राजा माना गया है। मगर यह दिव्य आहार निम्न आय वर्ग तो छोड़ो मध्यमवर्ग को भी सीधे से कहां नसीब होता है। आज के जमाने में जलेबियां और पूरियां तक तेल की खाकर लोग संतोष कर लेते हैं। मगर इलेक्ट्रिसिटी के जमाने में भी मंदिर में दिये जलाए जाते हैं, वह भी शुद्ध घी के। प्रथा में परिवर्तन करने से लोग डरते हैं क्योंकि वे धार्मिक नहीं धर्मभीरू होते हैं। सही और तार्किक कदम भी नहीं उठाते क्योंकि अनिष्ट की आशंका से डरते हैं। जबकि समय-समय पर नई स्थितियों के अनुसार बदलाव हर रूढ़ हो चुकी चीज में होना चाहिए, चाहे वह धर्म से जुड़ी हुई ही क्यों न हो। मगर जो कट्टरपंथी हैं वे धर्म के नाम पर कुछ नहीं सुनना चाहते, बदलाव तो दूर की बात है। हो सकता है हिन्दुस्तान में किसी वक्त घी-दूध की नदियां बहती हों। तब ऐसी कोई प्रथाएं विकसित हुई हों। मगर आज भी मूर्तियों पर दूध बहाया जाता है और मंदिर के बाहर बैठा नन्हा ईश्वर बिलखता है। एक पर्वत की परिक्रमा लोग दूध की धार बहाते हुए करते हैं, इतना कि परिक्रमा पथ पर दूध का कीच हो जाता है। क्या आपका ईश्वर इससे खुश होता होगा? जरा सोचकर देखिए। गर्मियां आ रही हैं नीबू महंगे हो जायेंगे, मगर क्या व्यापारीगण अपनी दुकानों के आगे नीबू-मिर्ची के टोटके लगाना बंद कर देंगे? खाने वाले को चाहे चीजें न मिलें मगर हमारा अंधविश्वास दिन-ब-दिन और पुष्ट होता रहे, यही व्यवस्था हम निभाते हैं।

कुछ दिनों पहले ही एक खबर पढ़ी थी मुरैना के एक कस्बे में एक दूध-फैक्ट्री पर छापा मारा गया। वहां नकली दूध बन रहा था। नकली भी ऐसा कि पढ़कर आपकी सांसें ऊपर-की-ऊपर और नीचे-की-नीचे रह जायें। यहां दूध के नाम पर जहर बनाया, बेचा और पिलाया जा रहा था। फैक्ट्री में ग्लूकोज पॉवडर में टॉयलेट क्लीनर, साइट्रिक एसिड व हाइड्रोजन पेरॉक्साइड आदि मिलाकर दूध के रंग का द्रव्य बनाया जा रहा था और उसे दूध कहकर बेचा जा रहा था! ऐसा दूध बनाने-बेचने वालों की आत्माजाने कैसे ऐसा करने की गवाही देती है। क्या उन्हें इस दूध का सेवन करने वाले हजारों अनजान बच्चों के स्वास्थ्य के लिए डर नहीं लगता? नहीं, क्योंकि हममें से कई हैं जो व्यावहारिक जीवन में इंसान के प्रति बड़ी-से-बड़ी गलती करते हुए भी नहीं डरते मगर मामला तथाकथित धर्म का हो तो पाषाण प्रतिमा के प्रति भी गलती करने से डरते हैं। ऊपर शुद्ध घी के जिन कुंओं का वर्णन हुआ है वहां नौ-नौ कुएं भर घी में भी न कोई मिलावट, न बेईमानी, न कोई चोरी होती है क्योंकि लोग मानते हैं कि घी के चढ़ावे में किसी भी प्रकार की गड़बड़ी करने पर उन्हें श्राप लगता है। कुष्ठ, चर्म रोग आदि बीमारियां हो जाती हैं। मगर असल जीवन में बेईमानी करने में उन्हें डर नहीं लगता। खूब मजे से चोरी, भ्रष्टाचार, मिलावट होता है और किसी श्राप का डर नहीं लगता क्योंकि हमने आम जीवन की संवेदना और मनुष्यता को धर्म के दायरे से बाहर खदेड़ दिया है।

(साभार : नई दुनिया, 11 मार्च 2015)

ध्यान क्या है?

एक विद्वान ने लिखा है कि एक सेमिनार में मेरे सामने ध्यान क्या है? अचानक यह प्रश्न आने से मैं अचकचा गया और असमंजस में पड़ गया कि क्या उत्तर दूं! फिर मेरे मुख से अचानक निकल गया कि 'ध्यान अपने मन की गाड़ी को न्यूट्रल गियर में रखना है जब रिवर्स गियर लगता है तब गाड़ी पीछे जाती है। पहला, दूसरा और अन्य गियर लगते हैं तो गाड़ी आगे जाती है। न्यूट्रल गियर में गाड़ी न आगे जाती है न पीछे जाती है, जहां के तहां रहती है। अपने मन की गाड़ी को न्यूट्रल गियर में रखना ही ध्यान है। न भविष्य की कल्पना करना है न भूत की स्मृति में जाना है। जरा ख़्याल करें कि मन कहां भागता है और क्या सोचता है? या तो भूतकाल की बीती हुई घटनाओं को सोचता रहता है या भविष्य की कल्पनाओं में डूबा रहता है। भूत में जो कुछ हुआ है सब मुर्दा है, लौटकर आ नहीं सकता। भविष्य सपना है। क्या होगा, कुछ पता नहीं है। वर्तमान का क्षण—यही अपना है। मन को केवल वर्तमान में रखना ध्यान है।

लेकिन मन वर्तमान में कहां रहता है? आगे भागता है या पीछे भागता है। न्यूट्रल गियर में रखने का अर्थ है किसी प्रकार का कोई चिंतन न करना, कोई कल्पना न करना, कोई विचार न करना। कोई विचार, चिंतन या कल्पना नहीं, पूरी तरह से जागरूक और शान्त मन यही ध्यान की स्थिति है, यही समाधि है। इसे ही सद्गुरु कबीर ने सहज समाधि या सहज ध्यान कहा है। जब कोई विचार नहीं होता, कोई कल्पना नहीं होती, कोई संकल्प-विकल्प नहीं होता तब हम अपने आप में होते हैं और जब विचार-संकल्प उठते हैं, कल्पना उठती है तब हम संसार से जुड़ते हैं। संकल्पों का पुल टूट जाये तो द्रष्टा चेतन का जड़ जगत से सम्बन्ध टूट जाये।

जैसे नदी के दोनों तटों को जोड़ने वाला पुल होता है। पुल टूट गया तो दोनों तटों का सम्बन्ध टूट गया। वैसे ही मन भी पुल है। मन क्या है? मन है संकल्पों का पुलिंदा। संकल्प ही मन है। संकल्पों को खत्म कर दें, विचारों को खत्म कर दें तो दुनिया नहीं रह जायेगी। इसका मतलब यह नहीं है कि दुनिया समाप्त हो जायेगी। दुनिया जहां है तहां रहेगी। हमारे लिए नहीं रहेगी। हम अपने आप से जुड़ेंगे।

संकल्प जब तक चलते हैं, हम अपने आप से दूर होते हैं। संकल्प उठना बन्द हो गया तब हम अपने आप रह गये। यह चेतन-पुरुष असंग है। उपनिषद् में चेतन को "असंगो अयम् पुरुषः" कहा गया है। यह चेतन पुरुष असंग है, अद्वैत है, अकेला है। अपने उस असंगत्व का ख्याल रखना है। संकल्प बन्द हो गये तो चेतन-पुरुष की अपने आप में स्थिति हो गयी यही मोक्ष है। पुरुष—शरीर रूपी पुर में निवास करने वाला जो आत्मा है वह पुरुष है चाहे वह स्त्री शरीर में हो चाहे पुरुष शरीर में हो। "पुरि शेते पुरुषः।" यह शरीर एक पुर (गांव) है, इसमें शयन करने वाला, निवास करने वाला जो आत्म तत्त्व है उसे पुरुष कहा गया है। वैसे पुरुष की एक और भी परिभाषा दी जाती है। पुर्+उष् दोनों शब्दों को मिलाकर होता है पुरुष। 'पुर्' कहते हैं आगे को और 'उष्' कहते हैं जलाने को। जो आगे-आगे ज्ञान-प्रकाश करता जाये वह पुरुष है। चेतन ज्ञान स्वरूप है, ज्ञान के अलावा और कुछ भी नहीं है। सदैव अपने ज्ञान-प्रकाश को ज्योतित रखना—यही पुरुष का पुरुषत्व है, यही अपने आप में होना है और यही ध्यान की स्थिति है, यही समाधि की स्थिति है।

लेकिन हमें इस स्थिति का ख्याल नहीं रहता। सदैव हम बाहर, संकल्पों में बहते रहते हैं। आदमी सपनों में जीता रहता है। जितने विचार आते हैं सब स्वप्न के समान ही तो हैं। आप सपना देखते हैं क्षण-क्षण में दृश्य बदलता रहता है। कुछ पता नहीं रहता कि अगले क्षण कौन-सा दृश्य आयेगा? बहुत तेजी से दृश्य बदलता है सपना में। मन की दशा भी ऐसी ही है। अगले क्षण मन कौन-सा विचार सोच लेगा, क्या विचार आ जायेगा, कुछ पता नहीं है और उन्हीं संकल्पों में, विचारों में हम बहते रहते हैं।

संकल्पों में रस लेंगे तो संकल्पों का आना कभी बन्द नहीं होगा। संकल्पों में रस न लें, केवल उन्हें देखें। केवल द्रष्टा रहें। जैसे नदी के तट पर बैठा हुआ व्यक्ति नदी की तरंगों को देखता है, उनमें बहता नहीं है। जो नदी की धारा में तरंगों के साथ बहता रहता है वह तरंगों का द्रष्टा नहीं हो सकता। बहने वाला द्रष्टा कैसे होगा? द्रष्टा वह होगा जो अलग होगा, तटस्थ होगा, किनारे बैठा होगा। आप नदी के किनारे बैठे हैं तो नदी की तरंगों को, नदी की धारा को देख रहे हैं। ऐसे ही विचारों-संकल्पों के द्रष्टा बनें। विचारों की धारा चल रही है, विचारों की तरंगें उठ रही हैं उनमें बहें न, मिलें न, केवल देखें? यह सोचें कि ये तरंगें अलग हैं, विचार अलग हैं, संकल्प अलग हैं और मैं इनका द्रष्टा इनसे सर्वथा पृथक हूं, असंग हूं। ये विचार, ख्यालात, संकल्प मेरे अपने स्वरूप में नहीं हैं, किन्तु इनका उद्‌गम स्थल मन है और मन मुझसे अलग है। इस प्रकार आप देखना शुरू करें तो देखते-देखते ऐसा समय आयेगा जब संकल्प उठना बन्द हो जायेगा और जब संकल्प उठना बंद हुआ तब आप अपने आप से जुड़ गये, अपने आप में स्थित हो गये—यही ध्यान है।

सांख्य दर्शन में कहा गया है—"ध्यानं निर्विषयं मनः"। मन का निर्विषय हो जाना ध्यान है। कुछ भी सोचना विषय है। अपने से अलग जो कुछ है सब विषय है और उनसे अलग हो जाना—ध्यान है। अपने आप से जुड़ना यह वर्तमान की स्थिति है।

शुरू में कहा गया है मन को न्यूट्रल गियर में रखना है न आगे का सोचना है, न पीछे का सोचना है। जहां के तहां जैसे के तैसे रह जाना है। वर्तमान जीवन में जब से हमने होश सम्हाला है, इन्द्रियों के व्यवहारों को ही जीवन माना है। जीवन है तो इन्द्रियों का व्यवहार करना पड़ेगा लेकिन उनसे अपने को हर समय जोड़े रहना गलत है। कोई काम किया या खाये तो द्रष्टा बनकर खा लिये, काम का समय आया तो काम कर लिये, करने के बाद भूल गये। अगर आप केवल द्रष्टा रहें, हमेशा वर्तमान में रहें तो आपका भोजन करना भी ध्यान बन जायेगा। खेत गोड़ना भी ध्यान बनेगा, पुस्तक पढ़ना एवं लेख लिखना भी ध्यान बनेगा, हर काम ध्यान बनेगा केवल वर्तमान में रहें तो।

भोजन कर रहे हैं लेकिन मन न मालूम कहां-कहां घूम रहा है? भोजन करते समय मन केवल भोजन में रहे, काम करते समय मन केवल काम में लगा रहे तो आप देखेंगे उस भोजन में कितना आनन्द आयेगा, काम में कितना आनन्द आयेगा।

एक संत से किसी ने पूछा था कि महाराज जी, आप की साधना क्या है? संत ने कहा कि, भूख लगती है तो खा लेता हूं, नींद लगती है तो सो जाता हूं बस मेरी यही साधना है।

लेकिन क्या हमारे जीवन में ऐसा होता है। बिस्तर पर गये तो दुनिया भर का बोझ लादकर गये। सोच रहा है मन कुछ-न-कुछ, चिंता में डूबा हुआ है तो नींद जल्दी नहीं लगेगी। बिस्तर पर जायें तो दुनिया को उतार कर जायें। शयनकक्ष में कदम रखने के पहले ही दुनिया को शयनकक्ष के बाहर ही छोड़ दें। यदि आप अपने शयनकक्ष में जा रहें तो दुनिया को दरवाजे के पास कह दें कि यहां आपका प्रवेश निषेध है। अब मैं शयन करने जा रहा हूं, तो आप पायेंगे एक मिनट के अन्दर ही आपको नींद आ जायेगी। किन्तु दुनिया का बोझा लेकर जायेंगे तब बदलते रहिये करवट, आधी रात बीत जायेगी नींद नहीं आयेगी। खाना खाने आप बैठते हैं तो कितनी चिंता लेकर बैठते हैं। जो काम जिस समय करना है केवल उसी में मन को लगाइये। सद्‌गुरु कबीर ने कहा है "उठत बैठत कबहूं न छूटे ऐसी तारी लागी" कबीर साहेब ने इस बात को अनुभव करके कहा है, जीवन जी कर कहा है। सद्‌गुरु कबीर ऐसे संत हुए हैं, जिन्होंने कहने के लिए नहीं कहा है। उन्होंने पहले जीवन जिया और जीकर देखा, अनुभव किया तब उस अनुभव को शब्दों में व्यक्त किया। "जहँ जहँ डोलौं सो परिकरमा, जो कुछ करौं सो पूजा। जब सोवौं तब करौं, दण्डवत भाव मिटावों दूजा " दूजा भाव मिटाना क्या

है? दुनिया का भाव मिटा कर केवल आत्मभाव में रहना।

आप लेट गये तो मानो भगवान को दण्डवत कर रहे हैं। आप मन्दिर में गये और दण्डवत पड़ गये मूर्ति के सामने किन्तु मन मन्दिर के बाहर जूते पर है कि कहीं उसे कोई उठाकर न ले जाये। आपका शरीर भगवान का दण्डवत कर रहा है लेकिन मन जूता का दण्डवत कर रहा है। इससे काम कैसे बनेगा? एक समय में एक काम हो तो फिर हर काम ध्यान और पूजा बनेगा।

इसलिए केवल वर्तमान में जीयें। यदि वर्तमान में जीते हैं तो आप ध्यान में हैं। आप ध्यान करने बैठे हैं तो मन को केवल वर्तमान में रखकर देखिये और कुछ मत सोचिये आगे-पीछे की बात। जहां सोचना शुरू किये आगे-पीछे की बात आयेगी, और देखेंगे कि ध्यान का समय बीत गया लेकिन ध्यान नहीं लगा। अतः अपने मन को न्यूट्रल अवस्था में रखकर देखें और स्वयं इसका अनुभव करें।

—धर्मेन्द्र दास

पल भर में मिट सकता है आपका क्रोध

लेखक–श्री भीकमचन्दजी प्रजापति

क्रोध की जांच—यदि आप अपने मन में परिवार के किसी भी सदस्य को बुरा समझते हैं, बाहर उसकी निन्दा, आलोचना करते हैं, व्यवहार में उसका अपमान, अनादर, तिरस्कार तथा उससे लड़ाई-झगड़ा करते हैं तो माना जायेगा कि आपके जीवन में क्रोध है।

क्रोध किस पर आता है—इसका उत्तर है—अपने परिवार के सदस्यों पर, अपनी पत्नी, अपने पति, बच्चों, भाई, बहनों, माता, पिता, देवरानी, जेठानी, ननद, भाभी आदि पर। बाहर के लोगों पर आने वाला क्रोध क्षणिक होता है।

नुकसान—क्रोध से शरीर में ब्लड प्रेशर, सुगर, हार्ट अटैक, लकवा एवं कैंसर-जैसे असाध्य रोग पैदा हो जाते हैं। मन दुख, अशान्ति एवं तनाव से ग्रसित हो जाता है। जिस पर आप क्रोध करते हैं, वह आपसे नाराज हो जाता है, सम्बन्धों में कटुता आ जाती है, घर में कलह हो जाता है, बच्चों का विकास रुक जाता है, श्वास का खर्च बढ़ जाने से मौत जल्दी हो जाती है, साधना में पतन हो जाता है, सम्पूर्ण जीवन बर्बाद हो जाता है।

प्रकार—क्रोध अनेक प्रकार का होता है—

(क) अन्दर एवं बाहर का क्रोध—मन में रहने वाले क्रोध को अन्दर का क्रोध कहते हैं। आप मन में किसी को खराब समझते हैं, बाहर उसके साथ सामान्य व्यवहार करते हैं। मन का क्रोध कालान्तर में बाहर आ जाता है। वाणी तथा व्यवहार के स्तर पर आने वाले क्रोध को बाहर का क्रोध कहते हैं। अन्दर के क्रोध से निश्चित रूप से ब्लड प्रेशर एवं हार्ट की बीमारी हो जाती है।

(ख) क्रोध करना तथा क्रोध आना—हृदय में शान्ति और करुणा की भावना रखकर अपने परिवारजनों, कर्मचारियों आदि को सुधारने के लिए बाहरी स्तर पर आप जान-बूझकर जो क्रोध का अभिनय या नाटक करते हैं, उसे क्रोध करना कहा जाता है। आवश्यकता पड़ने पर आप कभी-कभी क्रोध का नाटक कर सकते हैं। आपके अन्दर भी क्रोध है, व्यवहार में भी क्रोध है, वाणी में कटुता है, मन एकदम अशान्त है, पागल की तरह चिल्लाते हैं—इसका नाम है क्रोध आना।

(ग) अस्थायी एवं स्थायी क्रोध—थोड़ी देर के क्रोध को अस्थायी क्रोध कहते हैं, जैसे दस मिनट, आधा घंटा, एक घंटा, दो घंटा। लम्बे समय तक रहने वाला क्रोध स्थायी क्रोध कहलाता है।

एक पल में क्रोध का नाश—आपको ऐसी शक्ति दी गयी है कि आप अपने क्रोध को अभी-अभी एक पल में सदैव के लिए जड़मूल से मिटाकर अपने मन को शान्त और अपने परिवार को स्वर्ग बना सकते हैं।

निम्नलिखित बातों को भलीभांति समझ लीजिये—

क्रोध क्यों आता है—इसका एकदम सही उत्तर है—एक गलत बात को सोचने से। परिवारजनों द्वारा किया जाने वाला अपमान, अनादर, तिरस्कार, नुकसान, निन्दा, अवज्ञा, बुराई आदि क्रोध के वास्तविक कारण नहीं हैं।

कौन-सी गलत बात सोचने से क्रोध आता है—इसका उत्तर है—मुझे मेरे परिवार के अमुक सदस्य ने बहुत दुख दिया, जैसे मुझे पति ने बहुत दुख दिया, पत्नी से दुख दिया, बेटे ने दुख दिया, भाई ने दुख दिया, सास अथवा बहू ने दुख दिया आदि। आप जिसके बारे में ऐसा सोचेंगे कि मुझे उसने दुख दिया, उस पर आपको क्रोध आयेगा ही, आप उससे बच नहीं सकते।

क्रोध कैसे मिटता है—इसका एकदम सही उत्तर है—सही बात को सोचने से, अन्य किसी भी प्रकार से नहीं। अन्य उपायों से क्रोध को मिटाने में आपको मदद मिलेगी, पर क्रोध की जड़ नहीं कटेगी।

कौन-सी सही बात को सोचने मात्र से क्रोध मिटता है—इसका उत्तर है—मुझे मेरे परिवार के किसी सदस्य ने कभी दुख नहीं दिया, न वर्तमान में दे रहा है, न भविष्य में दे सकता है। मुझे कोई भी व्यक्ति दुख दे ही नहीं सकता—इस सच्ची तथा सही बात को सोचते ही उसी पल आपका भीषण-से-भीषण क्रोध जड़ से मिट जायेगा।

कैसे समझें कि मुझे किसी ने दुख नहीं दिया—विचार कीजिये—क्या आप किसी भी प्रकार का दुख चाहते हैं। आपका उत्तर होगा—नहीं। आप दुख चाहते नहीं हैं, फिर भी आपके जीवन में दुख आ जाता है, यह आपके जीवन का अनुभव है। उदाहरणतः आपके न चाहने पर भी आपके एवं आपके प्यारे परिवारजनों के शरीर में बीमारी आ जाती है, दुर्घटना एवं मृत्यु हो जाती है, घाटा लग जाता है, आपका अपमान हो जाता है। आपके न चाहने पर भी आपके जीवन में दुख आ जाता है। इसका मतलब यह हुआ कि दुख के आने में आपका कोई वश नहीं चलता है। यदि आपका वश चलता होता तो आप अपने जीवन में दुख को आने ही नहीं देते।

अब सोचिये—वह कौन है जो आपके न चाहने पर भी आपके जीवन में पल भर में बड़े-से-बड़े दुख को भेज देता है और आपके जीवन के सुख को निर्दयी इंसान की भांति एक क्षण में आपसे छीन लेता है। इस प्रश्न के उत्तर हैं—आपके गलत कर्म, आपका भाग्य, आपका प्रारब्ध, आपका खराब समय, आपके नकारात्मक विचार, आपकी अपनी भूल जिसका नाम है—पराधीनता, होनहार या भावी, देवदोष या पितृदोष। इन दस में से कोई-न-कोई कारण बनता है तब आपके जीवन में दुख आता है। अब सोचिये—क्या इस संसार में ऐसा कोई मनुष्य है जिसको यह अधिकार दिया गया हो कि तुम चाहो उसके जीवन में खूब दुख भेज देना और उसका सुख उससे छीन लेना। इसका उत्तर होगा—नहीं, कदापि नहीं। इसका मतलब यह हुआ कि कोई भी मनुष्य आपको दुख नहीं दे सकता।

सही चिन्तन—जब आपके जीवन में किसी भी प्रकार का दुख आये तो आपको यही सोचना चाहिए कि यह दुख उक्त में से किसी-न-किसी कारण से आया है, मुझे किसी भी परिवारजन एवं व्यक्ति ने दुख नहीं दिया है। इस सही चिन्तन से, यह बात सोचते ही, उसी पल आपका क्रोध मिट जायेगा। यदि आप सोचेंगे कि मुझे यह दुख परिवार के अमुक सदस्य ने दिया है तो आपको क्रोध आयेगा। ऐसा सोचना अपने जीवन के सच्चे अनुभव को ठोकर मारना है।

आप गलत बात क्यों सोचते हैं—आपके गलत बात सोचने का एक खास कारण है जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—आपके जीवन में जब भी दुख आयेगा तो वह दो तरह से आयेगा। एक तो इस प्रकार से दुख आयेगा कि उसको देने वाला आपको आंखों से दिखाई नहीं देगा, आपको पता यह भी नहीं चलेगा कि मुझे यह दुख किसने दिया, जैसे–संयम–नियम से सावधानीपूर्वक रहने के बाद भी आपके शरीर में असाध्य रोग हो गया, पूरी सावधानी से व्यापार करने पर भी नुकसान लग गया, अपनी कार बहुत होशियारी से चलाने के बाद भी गाड़ी उलट गयी, चोट लग गयी, परिवार का सदस्य बैठे–बैठे एवं बातचीत करते–करते ही भगवान के घर चला गया आदि। ये ऐसे दुख हैं जो अपने–आप आ गये, सावधानी रखी, फिर भी आ गये। आपको पता ही नहीं चला कि दुख किसने दिया। ऐसी स्थिति में आपको किसी पर कण मात्र भी क्रोध नहीं आयेगा। यदि आपकी लापरवाही एवं असावधानी से दुख आया है तो आपको पश्चाताप होगा।

दूसरे, आपके जीवन में इस प्रकार दुख आयेगा कि उसको देने वाला आपको अपनी आंखों से दिख जायेगा। यहीं पर आपको सावधानी रखनी है। जब आपको आपके परिवार का कोई सदस्य दुख देता हुआ दिखे, तब आपको तत्काल भीतर–ही–भीतर यह सही बात सोच लेना चाहिए कि इसने मुझे दुख नहीं दिया है। यह दुख उक्त किसी–न–किसी कारण से आया है, यह दुख मेरे ही कर्मों, भाग्य, प्रारब्ध, खराब समय, नकारात्मक विचार, मेरी भूल आदि के कारण आया है, इसने मुझे दुख नहीं दिया है। ऐसा सोचते ही आपका क्रोध मिट जायेगा। जब वह आपको दुख दे तो आप अपना बचाव कर सकते हैं, बातचीत कर सकते हैं, उसके विरुद्ध कार्यवाही कर सकते हैं। करें, पर यह कभी नहीं सोचें कि इसने मुझे दुख दिया है।

आप कहेंगे यह मुझे दुख देता हुआ साफ–साफ दिख रहा है। ऐसी स्थिति में यह कैसे सोचें कि इसने दुख नहीं दिया। इसका उत्तर यह है कि आपको देखने के तीन यन्त्र दिये गये हैं—आंखें, बुद्धि, विवेक। आंखें देखने का सबसे कमजोर यन्त्र हैं, उन पर भरोसा नहीं करें। बुद्धि उनसे ज्यादा बलवान एवं तेज यन्त्र है, विवेक सबसे तेज यन्त्र है। उदाहरण लीजिये—पांच दिन पुराने रसगुल्ले या गुलाबजामुन हैं, रात्रि की सब्जी है, गर्मी से उसमें बदबू पैदा हो गयी। आंखों से रसगुल्ले, गुलाबजामुन, सब्जी आपको वैसी ही दिखाई देगी। यदि आप आंखों पर भरोसा करके उन चीजों को खायेंगे तो आपको भीषण नुकसान होगा। बच्चों से यह भूल हो सकती है। ऐसी स्थिति में आप बुद्धि से उन चीजों को देखेंगे तब बुद्धि आपको यह बतायेगी कि ये खराब हो गयी हैं, मत खाओ, खाने से नुकसान होगा। आप बुद्धि के निर्णय को मानेंगे। बुद्धि भी आपको धोखा दे सकती है। चोरी करने का सर्वोत्तम तरीका बुद्धि बता देती है। विवेक आपको बतायेगा कि चोरी करना भूल है। तुम्हारे घर कोई चोरी करे तो तुम्हें कितना दुख होगा, चोरी मत करो।

जब आप बुद्धि और विवेक से सोचेंगे और देखेंगे कि मुझे यह दुख किसने दिया तो आप तत्काल यह निर्णय कर लेंगे कि यह तो उक्त कारणों में से किसी कारण से आया है। अन्य कारणों के सम्बन्ध में आपको शंका हो सकती है, लेकिन आपको यह मानना ही पड़ेगा कि दुख आपकी अपनी गलती से आता है। उस गलती का नाम है—पराधीनता। शरीर, परिवारजनों एवं किसी भी व्यक्ति से आप किसी प्रकार की कामना रखेंगे तो आप पराधीन हो जायेंगे। कामना को पूरी करना या करवाना आपके वश की बात नहीं है—यह आप भली–भांति जानते हैं।

जब आपकी कामना या इच्छा पूरी नहीं होगी तब आपको निश्चित रूप से दुख होगा, चिन्ता होगी, मानसिक तनाव होगा, परेशानी होगी। आप कामना मिटा दें, केवल सद्भावना रखें, अपना कर्तव्य एवं कार्य करें, उसके बाद आपको न कभी दुख होगा, न किसी पर क्रोध आयेगा। आपको स्वतः शान्ति, मुक्ति, भक्ति, भगवान, सब कुछ मिल जायेंगे। यही आपके मानव जीवन की सर्वोत्तम सफलता का सुन्दरतम चित्र है।

(साभार : कल्याण, सितंबर,)

शंका समाधान

प्रष्टा—सुप्रभा, जोधपुर, राजस्थान

. **प्रश्न**—कुछ लोग कहते हैं कि सेवा, सत्संग, स्वाध्याय करके ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। ध्यान करने से कुछ नहीं होता। ध्यान करना समय बरबाद करना है। तो क्या ध्यान की आवश्यकता नहीं है?

उत्तर—सेवा, सत्संग, स्वाध्याय के बिना न तो चित्त शुद्ध होगा न ज्ञान मिलेगा और न साधना-मार्ग में प्रगति होगी। सेवा, सत्संग, स्वाध्याय को छोड़कर कोई साधना-मार्ग में सफल हो ही नहीं सकता। इन तीनों की महती आवश्यकता से इंकार नहीं किया जा सकता, परन्तु ध्यान के बिना तो कोई मानसिक शांति का अनुभव कर ही नहीं सकता। ध्यान की जीवन में वही आवश्यकता है जो आवश्यकता शरीर के लिए भोजन की है। जैसे भोजन किये बिना कोई व्यक्ति जीवित नहीं रह सकता वैसे ध्यान के बिना पूर्ण चित्त-शांति का अनुभव नहीं कर सकता।

जो लोग कहते हैं कि ध्यान करना समय बरबाद करना है वे कभी ध्यान करते ही नहीं हैं तो वे ध्यान के महत्त्व एवं आवश्यकता को तथा उससे प्राप्त होने वाली चित्त-शान्ति को समझ ही कैसे सकते हैं। जिनकी दृष्टि में सांसारिक भोग-ऐश्वर्य, पद-प्रतिष्ठा, मान-प्रसिद्धि, गुरुवाई व गद्दी की प्राप्ति एवं बढ़ोत्तरी ही जीवन की महत्तम उपलब्धि है तथा इनके चिंतन में ही जिनका मन रात-दिन लीन है वे कभी ध्यान के महत्त्व एवं आवश्यकता को समझ ही नहीं सकते, उनके लिए ध्यान करना समय बरबाद करना जैसा लगेगा ही। परन्तु जो सच्चे कल्याणार्थी साधक हैं, जो सारे मानसिक क्लेशों से पूर्ण छुटकारा पाकर आत्मस्थिति एवं आत्मानंद के निर्मल सरोवर में निमज्जन करना चाहते हैं या करते हैं उनके लिए ध्यान से बढ़कर तो क्या ध्यान के बराबर भी कुछ महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। हां, ऐसे साधक भी जीवनपर्यन्त सेवा, सत्संग, स्वाध्याय का आधार लेकर ही रहते हैं।

कौन क्या कहता है इसकी चिंता छोड़कर हमें प्रतिदिन कम से कम घंटा आधा घंटा ध्यानाभ्यास करना चाहिए। जिसकी जैसी बुद्धि और समझ होती है वह वैसे ही कहता है। उससे अधिक वह कैसे कह सकता है। इसलिए किसी को दोष न देकर वही काम करना चाहिए, जिसमें हमारा अपना लाभ एवं कल्याण हो।

. **प्रश्न**—ध्यान क्या है और कैसे करना चाहिए?

उत्तर—सम्पूर्ण और वास्तविक ध्यान है कुछ न करना। कुछ न करने का तात्पर्य है तन-मन-वचन का पूर्ण शान्त और मौन हो जाना, जिसके लिए सद्गुरु कबीर ने कहा है—तन थिर मन थिर वचन थिर, सुरति निरति थिर होय। सांख्य दर्शन में कहा गया है—ध्यानं निर्विषयं मनः। अर्थात मन का निर्विषय—संकल्प-विकल्परहित, निर्विचार हो जाना ध्यान है। कुछ न करना, मन का पूर्ण मौन, शांत, निर्विचार हो जाना अंतिम ध्यान, अंतिम स्थिति है। इस स्थिति तक पहुंचने के लिए बहुत कुछ करना होता है।

ध्यान की दो स्थिति होती है एक अभ्यासकाल की और दूसरी व्यवहारकाल की। अभ्यासकाल के ध्यान को हम प्रारम्भिक और अंतिम दो भागों में बांट सकते हैं। मन की चंचलता, यहां-वहां भटकते रहना हर मनुष्य का सहज-सामान्य अनुभव है। इस चंचल एवं भटकते मन को किसी एक जगह पर स्थिर एवं एकाग्र करने के लिए सांस, ज्योति, बिन्दु, गुरु या इष्ट का चित्र, नासिकाग्र को देखते रहना या किसी अन्य शुभ आलम्बन-आधार पर ठहराना उसको देखते रहना, अन्य विषय का चिंतन न करना अभ्यासकाल का प्रारम्भिक ध्यान है। निरंतर के अभ्यास से जब मन किसी एक आलम्बन में देर तक एकाग्र और स्थिर हो जाये और शुद्ध एवं सूक्ष्म हो जाये तब उस आलम्बन को छोड़कर द्रष्टा अभ्यास करना चाहिए। द्रष्टा अभ्यास का अर्थ है मन में शुभाशुभ जो विचार आयें उनमें कोई सत्ता न देकर, उनमें न मिलकर उनको केवल देखते रहना और उनसे उदासीन-तटस्थ हो जाना। यह समझना कि विचार अलग हैं और मैं उनसे सर्वथा पृथक उनका द्रष्टा

चेतन हूं। इस प्रकार के निरंतर अभ्यास से विचारों का प्रवाह धीरे-धीरे कम होते-होते एक समय ऐसा आता है जब विचार पूरी तरह शांत हो जाते हैं। मन में किसी प्रकार का कोई विचार न रहकर मन पूर्ण निर्विचार हो जाता है। यह अभ्यासकाल का अंतिम और पूर्ण ध्यान है। जब मन में कोई विचार नहीं रह जाता, मन पूर्ण मौन, शांत और निर्विचार हो जाता है तब रह जाती है द्रष्टा चेतन की अपने आप में स्थिति। जिसके लिए योगदर्शन में कहा गया है—तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्। इसको हम पारख सिद्धान्त, सद्गुरु कबीर के शब्दों में कह सकते हैं—स्वरूपस्थिति।

दूसरा है व्यवहारकाल का ध्यान। जीवन निर्वाह का काम करते हुए भी ध्यान। घर में, खेत-खलिहान में, दफ्तर-कारखाना में काम करते, रास्ता चलते, खाते-पीते, नहाते-धोते, बात-व्यवहार करते—हर जगह हर समय मन को देखते रहना। मन में उठने वाले अशुभ-विकारी भावों-विचारों को हटाकर मन को शुभ-पवित्र भावों-विचारों में लगाये रखना। कोई भी काम करते समय निरंतर जागरूक-सावधान रहकर मन पर निगरानी रखना कि मन कोई गलत-विकारी चिंतन न करने पाये। सुबह जब नींद खुले तब से लेकर रात में जब पुनः सोने जाये तब तक मन का निर्विकार बने रहना। और आत्मचिंतन-स्वरूपज्ञान में डूबे रहना, व्यवहारकाल का ध्यान है। इसी स्थिति के लिए सद्गुरु कबीर ने कहा है—शबद निरंतर मनुवा राता, मलिन वासना त्यागी। ऊठत बैठत कबहूं न छूटे, ऐसी तारी लागी

अब प्रश्न है ध्यान कैसे करें? पहले जहां शुद्ध-स्वच्छ हवा का आवागमन तो हो किन्तु बाहरी शोरगुल, लोगों का अधिक आना-जाना न हो ऐसे एकांत, शांत, स्वच्छ स्थल में जिस आसन से देर तक और स्थिरता पूर्वक बैठ सकें बैठे जायें। कमर, मेरुदण्ड (रीढ़) तथा गरदन एक सिधाई में रखें, जैसे अंश का कोण बन रहा है। शरीर न अकड़ा हुआ हो और न ढीलाढाला हो। शरीर के किसी भी अंग में कोई तनाव-शिकन न रहने दें। आंखें या तो बंद रखें या अधखुली रहकर नासिकाग्र को देखते रहें या सामने एक-डेढ़ फीट की दूरी पर केन्द्रित रखें परन्तु ध्यान रखें कि आंखों में किसी प्रकार की चंचलता न रहने पाये। इस स्थिति में आने के बाद कुछ मिनट तक लम्बी गहरी सांस लेते और छोड़ते रहें। इससे मन की चंचलता मिटकर एकाग्रता आयेगी। फिर मन के अन्य चिंतनों को छोड़कर एक-दो मिनट अपने गुरु या इष्ट का चिंतन-स्मरण करें। फिर पूर्ण दृढ़ संकल्प और आत्मविश्वास के साथ कि आज मुझे ध्यान के अलौकिक आनंद, उस आनन्द का जिसका आज तक मैंने कभी अनुभव नहीं किया है और जिसके लिए मेरा मन निरंतर व्याकुल बना भटकता रहा है, का अनुभव करना है, ध्यान का अभ्यास शुरू करें। और इसके लिए जैसा कि पहले बताया गया है, सांस, ज्योति, नाद, बिन्दु, गुरु या इष्ट का चित्र या अन्य किसी शुभ आलम्बन में मन को एकाग्र-स्थिर करने का अभ्यास करें।

इस अभ्यास में सफलता पाने के लिए आवश्यक है कि खान-पान-भोजन शुद्ध, सात्त्विक, सुपाच्य एवं संतुलित-संयमित हो, नींद पूरी तरह से पची हुई हो अर्थात अनिद्रा न हो, नहीं तो ध्यान के समय नींद आ जायेगी, साधु-संगति, सत्संग-स्वाध्याय का सेवन हो; आत्म-अनात्म, चेतन-जड़ की भिन्नता का विवेक हो; भोगों की क्षणभंगुरता, आपातरमणीयता एवं दुखरूपता को समझकर उनसे कुछ उपरामता हो; लोगों के साथ प्रेम, समता, एकता का व्यवहार करते हुए भी सबसे निर्मोहता-अनासक्ति हो। यह समझना चाहिए कि आसक्ति ही सारे दुखों का मूल कारण है। आसक्ति का अर्थ है मन का सुखद एवं अपने माने गये प्राणी-पदार्थों में चिपके रहना, उनकी ही यादों में डूबे रहना। ऐसा मन ध्यान में कभी प्रवेश नहीं कर सकता। जीवन-यात्रा में प्राणियों (मनुष्यों) के साथ व्यवहार करना, सेवा करना-लेना तथा पदार्थों का उपयोग करना मजबूरी है, परन्तु इन सबका व्यवहार एवं उपयोग औषधिवत करते रहने से मन कहीं चिपकेगा नहीं। जब मन में कुछ-न-कुछ अनासक्ति, उपरामता एवं वैराग्य का भाव होगा तभी मन ध्यान में लगेगा और ठहरेगा।

ध्यान कैसे करें तथा ध्यान के लिए क्या-क्या सावधानी की आवश्यकता है, ध्यान का अभ्यास करते रहने पर इनकी जानकारी होती चली जायेगी। हां, ध्यान की पूर्णता के लिए तथा आध्यात्मिक दिशा में प्रगति-सफलता के लिए किसी योग्य ज्ञान-वैराग्यवान गुरु की शरणागति आवश्यक है तथा किसी योग्य गुरु-संत साधक के निर्देशन में ध्यानाभ्यास करने से जल्दी सफलता मिलेगी।

. **प्रश्न**—ज्ञान और ध्यान में क्या अन्तर है?

उत्तर—गुण-धर्मों सहित जड़-चेतन, सत्य-असत्य, बंध-मोक्ष का तथ्यात्मक बोध होना ज्ञान है और अपने आप का, स्वस्वरूप का अपरोक्ष अनुभव होना ध्यान है। ज्ञान में हम बाहर की वस्तुओं को जानते हैं, बाहर को देखते हैं, किन्तु ध्यान में हम स्वयं को जानते हैं, स्वयं को देखते हैं और स्वयं में होते हैं।

गुड़ मीठा होता है यह पढ़-सुनकर हम जान लेते हैं, किन्तु गुड़ की मिठास का अनुभव तो खाने पर ही होगा। इसी प्रकार पढ़-सुनकर हम यह तो जान जाते हैं कि मैं शुद्ध-बुद्ध निर्मल-निर्विकार असंग-अजर-अमर चेतन हूं, किन्तु इसका अनुभव पढ़-सुनकर कदापि नहीं होगा, अनुभव ध्यान की गहराई में उतरने पर ही होगा।

जैसे जंगले में लगे पारदर्शी कांच से हम बाहर की चीजों, पेड़-पौधे, जानवर, सड़क पर आते-जाते लोगों को देखते हैं किन्तु दर्पण में स्वयं को देखते हैं वैसे ही ज्ञान हमें बाहर की वस्तुओं को दिखाता है, और ध्यान हमें स्वयं को दिखाता है, आत्मसाक्षात्कार करवाता है।

—**धर्मेन्द्र दास**

लोग आपकी क्यों नहीं सुनते?

लेखक—डॉ. दीपक चोपड़ा

जब किसी बच्चे की बात को गंभीरता से सुना जाता है, तो अपनी नजरों में वह थोड़ा और ऊपर उठ जाता है। लेकिन इसके लिए उन्हें सुना जाना प्रमुख और महत्त्वपूर्ण बात है। वयस्कों पर भी यह बात लागू होती है। अगर आप अपनी बात से किसी का ध्यान कुछ देर के लिए खुद पर रोक नहीं पाते, तो खुद को बिल्कुल अच्छा नहीं लगता। दरअसल इसका एक मतलब यह भी होता है कि आगे चलकर लोग आप पर ही ध्यान देना बंद कर दें।

अगर आपको लगता है कि आपकी तो कोई सुनता ही नहीं, तो सोचिए कि इसका कारण क्या हो सकता है? इसका मतलब यह नहीं है कि इसका कारण हम दूसरों में ढूंढ़ने लगें, ना ही इसका मतलब यह है कि आप गलत हैं। समस्या है संवाद की और यह हम सब जानते हैं कि संवाद एक दोतरफा प्रक्रिया है। इसको ध्यान में रखते हुए घर हो या ऑफिस मुझे ऐसे सात स्पष्ट कारण समझ में आते हैं, जिनके कारण हो सकता है कि लोग आपकी बात पर ध्यान नहीं देते हों—

* अगली बार जब आप अपनी बात किसी से कहना शुरू करें, तो एक बात पर गौर करें। कहीं आपकी शुरुआत उलझी हुई तो नहीं होती? इस कारण बात पहली बार में ही जमती नहीं। आप बात कुछ यूं शुरू करते हैं कि उसमें निहित संदेश लोगों को ढूंढ़े नहीं मिलता। कुछ ऐसे कि मानो माला पिरोते समय एक गांठ लगाना भूल गये और पूरी बात बिखरकर रह गई।

* हो सकता है कि उसी समय किसी और चीज ने उनका ध्यान अपनी ओर खींच लिया हो।

* वे आपकी बात में रुचि नहीं रखते, लेकिन वे इसे आपसे कह नहीं पा रहे हैं।

* वे दिनभर इतने लोगों की सुनते हैं कि ना चाहते हुए भी उनका ध्यान बंट जाता है।

* हो सकता है कि आप जो कह रहे हैं, उस व्यक्ति की उससे जुड़ी कुछ निजी धारणाएं हों।

* आपने अपनी बात कहना उस समय शुरू किया, जब व्यक्ति सुनने के लिए पूरी तरह तैयार नहीं हो पाया था।

* आप दूसरे व्यक्ति पर कुछ ज्यादा ही दबाव डाल रहे हों, क्योंकि तनाव के चलते लोग किसी बात पर ध्यान देना बंद कर देते हैं।

इन सारे कारणों का हल भी निकाला जा सकता है। इसके लिए अपनी बात कहते समय आप थोड़ी सतर्कता बरतने की आदत डालें, ताकि आपकी बात से ध्यान हटाने वाली हर बाधा को आप तुरंत रफा-दफा कर सकें। अगर चाहते हैं कि लोग आपकी बात को एक समझदार व्यक्ति का नजरिया मानकर ध्यान से सुनें, तो अपने में कुछ बदलाव जरूर लायें।

तर्कों में अति ना करें। इसे कम करके केवल एक बिंदु बनाएं। यह जरूरी है कि आप भी इस एक बिंदु से सहमत हों। फिर यदि स्पष्टता है तो कहें। फिर यह समझने की कोशिश करें कि क्या आपकी यह बात सुनी गई? अगर आपको लगता है कि वे आपकी बात नहीं सुन रहे, तो एक बार मुद्दे पर उनकी राय भी पूछें। किसी भी कीमत पर एक साथ बहुत सारे पक्ष-विपक्ष के साथ बात न करें, वरना वे एक-दो वाक्यों के बाद ही ध्यान देना बंद कर देंगे।

कहते हैं बात हमेशा मौका और दस्तूर देखकर की जाती है। आप अपनी बात तब कहें, जब सुनने वाले का ध्यान एक से अधिक चीजों पर ना हो। कई बार यह मुश्किल काम ही होता है। ऐसे में यह बिल्कुल ना पूछें कि क्या आपके पास एक मिनट है? क्योंकि अधिकतर लोग नम्रता में 'हां' तो कह देंगे, पर आपकी बात को गंभीरता से सुनें, मुश्किल ही है।

* जो लोग आपकी बात में रुचि दिखायें, उन्हें ही अपनी बात सुनायें, वरना उत्साह कम ही होगा। उनकी अनिच्छा होते हुए भी उन्हें आपकी बात सुननी पड़ी, इस पर नाराजगी भी हो सकती है। इससे बेहतर है कि आप उनसे पूछ लें। अगर उन्होंने ना कहा भी, तो कम-से-कम आपके और उनके बीच ईमानदारी का रिश्ता तो कायम हो ही जायेगा।

* बहुत सारे लोग ऐसे होते हैं, जो सुनने की एक्टिंग में माहिर होते हैं। दरअसल हर आदमी उनसे दो मिनट बतियाना चाहता है। ऐसे में वह यह आदत विकसित कर लेते हैं। ऐसे लोग भी आपकी बात में रुचि लें, ऐसा चाहते हैं, तो उनसे अपनी बात कहिए, जिनकी बात पर वे अति व्यस्त लोग भी ध्यान देते हैं।

* अपनी बात से किसी की दुखती रग को छू देना बहुत अच्छी बात नहीं है। अगर ऐसा हो, तो क्षमा मांगते हुए वहां से हट जायें। उसकी भरपाई करने वाले तर्क ना दें।

* अगर आप गलत वक्त पर अपनी बात शुरू कर बैठे हैं और अचानक यह बात आपको पता चलती है, तो अपनी बात वहीं रोक दें। अपनी बात पूरी करने के लिए अड़े रहना अच्छा संदेश प्रेषित नहीं करेगा।

* अपनी बात कहने के लिए बहुत ज्यादा कोशिश ना करें। कई बार ज्यादा दबाव से और विरोध ही मिलता है। इसे भांपकर अपनी बात को आगे के लिए टाल दें। इसका मंत्र यही है कि पहले एक जुड़ाव बनाया जाये। थोड़ा निजी और गंभीर वातावरण बनने दें। जब कोई अपने बंधे हाथ आराम से खोलकर बात करने लगे, जब कोई आपकी आंखों में देखकर बात करने लगे या मुस्कराने लगे, तो इसका मतलब एक जुड़ाव बन चुका है। अब वह आपकी बात सुनेगा भी।

आशा करता हूं कि मेरे इन तरीकों से आपकी खुद से यह शिकायत खत्म होगी कि लोग आपकी सुनते नहीं। खुशी की राह पर आगे बढ़ते रहें।

(साभारः हिन्दुस्तान 28 सितम्बर 2015)

कहानी

आशा

लेखक—श्री भावसिंह हिरवानी

अपनी जिंदगी के सत्तर बंसत देख चुके अवधेश को कुछ दिनों से यह बराबर एहसास हो रहा था कि अब वे काफी थक चुके हैं। और इस दफे जब सर्दी ने कुछ ज्यादा जोर पकड़ा तो वे बेचैनी महसूस करने लगे। घुटनों में भी दर्द शुरू हो गया था। थोड़ा-सा चलते तो सांस फूलने लगती। उन्होंने सोचा, बुढ़ापे की सामान्य बीमारी है, सर्दी खत्म होते ही ठीक हो जायेगी, इसलिए लापरवाह बने रहे। हमेशा की तरह पड़ोसी गजाधर के साथ दिन भर बैठकर पेपर पढ़ते, टी.वी. देखते या गप्पे हांकते। इस तरह दोनों का समय बीत जाता।

इसी बीच एक रात जब सब लोग खा-पीकर सो गये तो अचानक उनकी नींद खुल गयी। उस वक्त उनकी छाती में हलका-हलका दर्द शुरू हो गया था और हृदय की धड़कन भी बढ़ गयी थी। उन्होंने अपनी पत्नी सरोज को जगा कर इसकी जानकारी दी तो वह घबरा गयी। धीरे-धीरे दर्द बढ़ता चला गया और वे इस सर्दी में भी पसीने से तरबतर हो गये। सरोज तत्काल अपने बेटी आशा को उठा लायी फिर दोनों उसे गाड़ी में बिठाकर अस्पताल ले गये।

यह पूस की ठंडी रात थी और बाहर चारों ओर सन्नाटा पसरा हुआ था। आशा बड़ी सावधानीपूर्वक कार चला रही थी। अस्पताल उनके घर से बीस किलोमीटर दूर था।

अवधेश सेवानिवृति के बाद शहर में बसने का मोह छोड़ नहीं पाये थे। गांव की पुस्तैनी जमीन, खेती-बाड़ी को रेग पर उठा दिया और शहर के करीब अपना आशियाना बना लिया। अवधेश को मकान बनाते देख गजाधर ने भी पास में ही जमीन खरीद लिया और पड़ोसी बन गये। दोनों हमउम्र थे। आगे-पीछे एक ही पद से सेवानिवृत हुए थे अतः दोनों में जमती भी खूब थी।

थोड़ी देर बाद वे अस्पताल पहुंच गये। चौबीसों घंटे आपात चिकित्सा उपलब्ध होने से उन्हें कोई परेशानी नहीं हुई। इलाज के दौरान डॉक्टर बोले थे, "लगता है, अटैक आया है। बहुत अच्छा किया जो आप लोग इन्हें तुरंत अस्पताल ले आये। देर करना खतरनाक हो सकता था।"

इसके बाद उन्हें प्राइवेट रूम में भर्ती कर दिया गया। सबेरे तक उनकी तबियत काफी सुधर गयी। आशा बाहर होटल से चाय ले आयी और अवधेश की ओर बढ़ाती हुई बोली, "पापा, क्या मैं घर चली जाऊं? नहा-धोकर नास्ता बना लाऊंगी।"

"हां, चली जाओ, अब काफी ठीक हूं। कुछ जरूरत पड़ी तो तुम्हारी मम्मी तो है ही। तुम्हें स्कूल भी तो जाना होगा?" अवधेश चाय की चुस्की लेने लगे।

"आप लोगों को नास्ता देकर आवेदन देने जाऊंगी। डॉक्टर साहब कुछ जांच कराने की बात कह रहे थे।" आशा एक गिलास अपनी मम्मी को देकर स्वयं भी चाय पीने लगी।

"पर तुम तो कह रही थी कि तुम्हारी छुट्टी खत्म हो गयी है।" अवधेश आशा की ओर देखते हुए बोले।

"तो क्या हुआ? अवैतनिक अवकाश ले लूंगी। हमें पैसों की कमी है क्या?" आशा बोली थी।

जवाब में अवधेश कुछ नहीं बोले केवल मुस्कुरा कर रह गये। अब तक तीनों चाय पी चुके थे। आशा उनके हाथ से गिलास लेकर बाहर चली गयी। होटल में चाय का पैसा दिया और कार लेकर घर के लिए निकल गयी।

आशा के चले जाने के बाद अवधेश सरोज की ओर मुखातिब हुए थे, "कई बार सोचता हूं, आशा नहीं होती तो शायद अब तक हम लोग परलोक सिधार चुके होते। जिस बेटे को अपना तारणहार समझते थे वह तो सैकड़ों किलोमीटर दूर मुम्बई में है। चाहे भी तो जरूरत पड़ने पर आ नहीं सकता। जिसकी उपेक्षा करते रहे वही हमेशा सुख-दुख में सेवा करती है। अब तो एक ही इच्छा बाकी है, इसका घर बस जाये, बस और कुछ नहीं चाहिए जिंदगी में।"

सरोज सहज भाव से बोली थी, "चिंता मत करो। जो भाग्य में लिखा होता है, वही होता है।" "हां, तुम ठीक कहती हो। ऐसा नहीं होता तो हमारा बेटा, हमसे दूर क्यों चला जाता?" अवधेश का मन उदास हो गया था।

"इधर-उधर की मत सोचो, सब ठीक होगा। मैं नहा-धो लेती हूं, फिर आप भी तैयार हो जाना।" सरोज बोली और बिना उसके जवाब की प्रतीक्षा किये वहां से उठ गयी।

आशा के मन में अपने लिए प्यार और त्याग देख अवधेश भावुक हो गये थे। ठीक कहती है आशा, उसे रुपये नहीं, पापा चाहिए। कैसी अजीब पहेली है जिंदगी? आदमी सोचता कुछ है, और होता कुछ है। उन्होंने सूरज को लेकर क्या-क्या सपने नहीं संजोये थे? सूरज जब पढ़-लिख कर नौकरी करने लगेगा तो वे बड़े धूमधाम से उसकी शादी करेंगे। बहू आयेगी तो बेटियों की कमी पूरी हो जायेगी। और वे दोनों पोता-पोती के संग सोने की बांटी ढुलाते चैन की बांसुरी बजायेंगे। पर मन की साध मन में ही रह गयी। अवधेश सोचते-सोचते अतीत में खो गये।

वे गांव में जन्में और पले-बढ़े थे, फिर भी तमाम अभावों के बावजूद अभियंता बनकर एक शानदार जिंदगी जीते रहे। लेकिन एक पुत्र के बिना उन्हें सब कुछ सूना और व्यर्थ जान पड़ता था। जब पहली संतान लड़की हुई तो उन्हें बहुत खुशी हुई थी। दूसरी भी लड़की हुई तब भी उन्हें अच्छा लगा था। परन्तु जब तीसरी संतान भी लड़की ही पैदा हुई तो वे बहुत हताश हो गये। वंश तो बेटा से ही चलता है। मरने पर उन्हें कौन पानी देगा? सोचकर वे दुख में डूब गये थे। फिर भी रस्मी तौर पर नामकरण संस्कार का आयोजन किया था।

तीन बेटियों के बाद भी उन्होंने बेटा की उम्मीद नहीं छोड़ी थी। लेकिन चौथी संतान भी बेटी ही हुई तो उनके दुख की कोई सीमा नहीं रही। उन्होंने कई दिनों तक अपनी पत्नी से कोई बात नहीं की, जैसे सारी गलती उसी की हो। उनके भीतर हताशा इस कदर हावी हो गयी कि उन्होंने इस लड़की का नामकरण संस्कार का रश्म भी नहीं निभाया। जब सरोज ने इसके लिए कहा तो वे चिल्ला उठे, "कोई जरूरत नहीं है। इसके आने से हमें कोई खुशी नहीं हुई है। यह तो हमारे लिए जीवन भर का बोझ है।"

उसकी पत्नी जवाब में कुछ नहीं बोली थी। बस, बच्ची को छाती से चिपकाये आंखों में आंसू भर कर टकटकी बांधे अवधेश को ताकती रह गयी। लेकिन स्वयं उसे आशा कहकर पुकारती रही और यही उसका नाम हो गया। बेटे की चाहत और बेटियों के प्रति अवधेश का नफरत देख सरोज अब और संतान उत्पत्ति के पक्ष में बिल्कुल नहीं थी। पर अवधेश की जिद्द के कारण उनके बीच मनमुटाव बढ़ गया। कुछ होता तो दोनों सारा गुस्सा निरपराध बच्चियों पर उतारते। फिर वही हुआ जो आम तौर पर होता है, सरोज को हार माननी पड़ी। किन्तु भीतर ही भीतर वह बहुत घबरायी हुई थी। कहीं इस बार भी लड़की हुई तो क्या होगा? वह उस स्थिति की कल्पना करके कांप उठती थी। मगर भाग्यवश इस बार उनकी इच्छा पूरी हो गयी और उनके घर एक सुन्दर बालक ने जन्म लिया।

अपने जीवन की सबसे बड़ी कमी पूरी हो जाने से अवधेश खुशी से पागल हो गये थे। इस वक्त बच्चे के नामकरण संस्कार पर उन्होंने दिल खोल कर खर्च किया और लगातार सात दिनों तक जश्न मनाया।

वक्त के साथ उनकी तीनों लड़कियां पढ़ने-लिखने के बाद खुशी-खुशी ब्याह कर अपने-अपने घर चली गयीं। केवल आशा का ब्याह बाकी था। पढ़ाई खत्म होते ही सौभाग्य से आशा को प्राथमिक शाला में शिक्षिका की नौकरी मिल गयी। फिर तो आशा हवा में उड़ने लगी। वह अपनी जिंदगी को पूरा जिंदादिली के साथ जी रही थी। स्कूटी से स्कूल जाती और शाम लौट आती। स्कूल से लौट कर कई बार वह अपनी मम्मी-पापा को बच्चों की हरकतों के बारे में बता कर खूब हंसाती।

वह अवधेश के जीवन में सफलता का दौर था। हर मां-बाप की तरह अवधेश को भी सूरज से बहुत उम्मीदें थीं। सूरज भी होनहार था। जैसा अवधेश चाहते थे, वह बराबर आगे बढ़ता रहा। कालेज की पढ़ाई पूरी कर वह इन्जीनियरिंग की पढ़ाई के लिए मुम्बई चला गया। तीन साल का कोर्स पूरा होते ही उसे वहां बहुत आकर्षक पैकेज के साथ जाब भी मिल गया। इसके बाद तो सूरज बस वहीं का होकर रह गया। उसके पास घर आने के

लिए भी समय नहीं था। उसने वहां फ्लैट बुक करवा लिया और कार भी खरीद लिया। उसकी इस प्रगति से अवधेश बहुत प्रसन्न थे।

लेकिन जब उसने एक विजातीय सहकर्मी से विवाह करने की जानकारी दी तो अवधेश सकते में आ गये। वे ऐसी स्थिति के लिए कतई तैयार नहीं थे। उन्हें लगा कि उनके पांव के नीचे की जमीन खिसक गयी है और वे अथाह खाई में गिरते जा रहे हैं। जिंदगी ऐसी करवट लेगी इसका उन्हें जरा भी एहसास नहीं था। उन्हें कुछ सूझ नहीं रहा था कि क्या करें, क्या न करें? इसी तरह वक्त गुजरता चला गया। इधर आशा की शादी की चिंता उन्हें खाये जा रही थी।

कुछ समय बाद वे सेवानिवृत्त हो गये थे। अब उनके चेहरे पर पहले की तरह खुशी नहीं थी। एक खूबसूरत सपने टूटने का गम उनके मन-मस्तिष्क को झिंझोड़ता रहता। इसी बीच दशहरा-दीवाली का अवकाश आ गया तो आशा बोली, "पापा, चलो आप लोगों को तीर्थयात्रा कराके लाती हूं।"

उसके इस प्रस्ताव से अवधेश का मन खिल उठा। उन्होंने पूछा, "किससे जायेंगे?"

"एक नई कार खरीद लेते हैं। अपनी गाड़ी में घूमने का बहुत मजा आयेगा। बाद में चलाना भी सीख लूंगी फिर हम छुट्टियों में खूब घूमेंगे।" आशा का चेहरा खुशी से दमक रहा था। अवधेश बोले, "नहीं, गाड़ी-घोड़ा चलाने का काम लड़कों का है, लड़कियों का नहीं?"

"क्यों, लड़कियां गाड़ी क्यों नहीं चला सकतीं? सूरज ने कार खरीदने की बात की तो आपने फौरन रुपये भेज दिया। मैं भी तो कमा रही हूं।" आशा उखड़ गयी थी।

आशा की मम्मी भी उसके समर्थन में खड़ी हो गयी, "ठीक तो कह रही है लड़की। क्या करेंगे रुपयों का? घर में गाड़ी रहेगी तो वक्त-जरूरत में काम ही आयेगी।"

अंत में अवधेश को झुकना पड़ा और दो दिन बाद उनके घर एक नई कार आ गयी। ड्रायवर भी आसानी से मिल गया। फिर वे पन्द्रह दिनों की टूर पर दक्षिण भारत के लिए निकल गये। इस यात्रा में उन्हें खूब मजा आया। उसी समय उन लोगों ने तय कर लिया कि गर्मी की छुट्टी में इस साल एक महीना उत्तर भारत के तीर्थों में घूमेंगे। वहां से लौटने के बाद आशा कार चलाना सीखने लगी और धीरे-धीरे वह अभ्यस्त हो गयी। अवधेश की तो हिम्मत ही नहीं पड़ी।

इसी बीच उन्हें एक आवश्यक कार्य से दो दिनों के लिए बाहर जाना पड़ा। आशा और उनकी मम्मी दोनों घर में थी। आशा हमेशा की तरह स्कूल चली गयी। कुछ देर बाद उसकी मम्मी को घबराहट होने लगी। उसने तुरंत फोन करके आशा को इसकी जानकारी दी। आशा घर लौटी तो सरोज खाट पर बेहोश पड़ी थी। वह पड़ोसन की सहायता से तत्काल सरोज को गाड़ी में लिटाकर अस्पताल ले गयी।

वहां मालूम पड़ा कि ब्लड प्रेशर बहुत बढ़ जाने से चक्कर आ गया था। उपचार मिलते ही वह होश में आ गयी। अवधेश को इसकी जानकारी मिली तो वे फौरन लौट आये। अस्पताल में सरोज को ठीक हालत में देखे तो उनकी जान में जान आयी। तब वे बहुत देर तक गुमसुम बैठे सोचते रहे, आशा नहीं होती तो क्या होता? और यदि उसे कार चलाना नहीं आता तो क्या वह अपनी मम्मी को समय पर अस्पताल ला पाती? क्या कोई बेटा, इससे भी ज्यादा करता? फिर दो दिन अस्पताल में रहकर वे घर लौट आये थे।

बुढ़ापे की जिंदगी, हमेशा कुछ-न-कुछ ऊंच-नीच लगा ही रहता। अब बेटा-बहू और पोता-पोती के संग जीने-खाने की उम्मीद टूट चुकी थी। वे जान गये थे कि यह सब केवल सपना है। बच्चों के साथ हंसने-बतियाने का मन होता तो बेटियों के घर चले जाते और एक-दो दिन रह कर लौट आते। इसी तरह जिंदगी की गाड़ी चलती रही और अचानक एक रात छाती में दर्द उठने से उन्हें अस्पताल में भर्ती होना पड़ा।

कुछ देर में सरोज नहा-धोकर बाहर आ गयी। फिर वे स्वयं तैयार होने चले गये। नौ बजे के करीब डॉक्टर आये थे। वे जांच करके बोले, "हृदय से संबंधित जांच के लिए लिख रहा हूं। शाम तक रिपोर्ट आ जायेगा फिर दवाई लिखूंगा।"

इसी समय आशा घर से नास्ता लेकर आ गयी। उसके साथ पड़ोसी गजाधर भी आ गये थे। दोनों परिवारों के बीच आपसी व्यवहार और मेल-जोल बहुत अच्छा था। गजाधर और उसकी पत्नी आशा को बेटी की तरह ही चाहते थे। वे अवधेश के पास बैठते ही उनका हाल-चाल पूछने लगे। जब उन्होंने बताया कि

तत्काल उपचार मिल जाने से कोई परेशानी नहीं हुई और तबियत संभल गयी तो हमेशा की तरह गजाधर बोले, "आप बहुत भाग्यशाली हैं अवधेश, जो आशा जैसी बिटिया मिली। काश, हमारी भी ऐसी ही कोई बेटी होती तो हम लोग भी कितने सुखी होते?"

शाम को जांच रिपोर्ट लेकर डॉक्टर स्वयं आये थे। उन्होंने रिपोर्ट दिखाते हुए कहा,"आपको हार्ट में प्राबलम है। जितनी जल्दी हो सके आपरेशन हो जाना चाहिए। तब तक परहेज से रहें और नियमित दवाई लेते रहें।"

सुनते ही अवधेश को एक आघात-सा लगा था जैसे जिंदगी अब कुछ ही दिनों की है। वे कुछ क्षणों तक एकदम जड़ हो गये थे। फिर छुट्टी लेकर घर लौट आये। कई दिनों तक गहन विचार-विमर्श चलता रहा। सब लोग चाहते थे कि आपरेशन जल्द से जल्द हो जाये पर अवधेश असमंजस की स्थिति में थे। वे आशा की शादी तक आपरेशन टालना चाहते थे। लेकिन आशा अड़ गयी थी। उसने कहा, "पापा, आपके आपरेशन के बाद ही मैं शादी करूंगी अन्यथा आजीवन कुंवारी रह जाऊंगी। आप ठीक हो जाइये फिर आपकी यह इच्छा भी पूरी जो जायेगी।"

उसकी बात सुन अवधेश थोड़ा चौंके थे, "क्या कोई लड़का है तुम्हारी नजर में?"

आशा मुस्कुराती हुई बोली थी, "हां है, पर आपरेशन के बाद ही बताऊंगी।"

"यदि ऐसी बात है तो तुरंत डॉक्टर से तारीख ले लो।" अवधेश भी मुस्कुराने लगे।

आपरेशन से पहले अवधेश बहुत घबराये हुए थे। उन्होंने पास बैठे गजाधर से कहा, "यार, एक वचन दो, यदि मुझे कुछ हो गया तो आशा को मेरी कमी महसूस नहीं होने दोगे।"

गजाधर उनके दोनों हाथों को अपनी हथेलियों में लेकर बोले, "यह मेरी खुशनसीबी होगी अवधेश। जिस अपराध-बोध की पीड़ा से जिंदगी भर तड़फ रहा हूं, उससे मुझे मुक्ति मिल जायेगी।"

"मतलब?" अवधेश आश्चर्य से गजाधर की ओर ताकने लगे।

गजाधर गंभीर स्वर में बोले, "यह एक राज की बात है जिसे मैं आजीवन बोझ की तरह ढो रहा हूं। मेरी पहली संतान लड़की थी, जिसे हमने दुनिया में आने नहीं दिया। चाहते हुए मैं आज तक उस घटना को भूल नहीं सका। कई बार वह बच्ची सपने में आकर पूछती है, "आपने ऐसा क्यों किया पापा? क्या अपराध था मेरा? आपने अपने घर में नहीं आने दिया तो पड़ोस में चली गयी। मगर वे भी मुझे पा कर खुश नहीं थे...।" और इसी के साथ मेरी नींद टूट जाती है। चाहकर भी मैं उसका चेहरा नहीं देख पाता। उसकी करुण पुकार से मैं कांप जाता हूं। अवधेश, लगता है आशा मेरी ही बेटी थी।"

इस रहस्योद्घाटन से अवधेश चकित रह गये। आज उनकी समझ में आया कि गजाधर और उसकी पत्नी आशा को इतना क्यों चाहते हैं? इसके साथ ही उनका मन हल्का हो गया था। उन्होंने कहा, "अब मुझे कोई गम नहीं है।" और मुस्कुराने लगे। उसी समय उन्हें आपरेशन कक्ष में ले जाया गया।

तकदीर अच्छी थी, आपरेशन सफल रहा। इस वक्त सूरज के साथ बहू भी आयी थी। कुछ दिन रह कर वे दोनों वापस लौट गये। उनकी अन्य बेटियां और दामाद भी सुविधानुसार आये और मिलकर चले गये। अवधेश को बीस दिनों तक अस्पताल में रहना पड़ा। इस दौरान आशा अकेली दौड़ती-भागती रही पर कभी उसके चेहरे पर शिकन नहीं आया।

अस्पताल से लौटने के हफ्ते भर बाद एक दिन अवधेश और गजाधर बैठे बतिया रहे थे। उसी समय उन्होंने आशा को बुलाकर कहा था, "आशा बेटी, अब तो उस लड़के को बुला लाओ जिससे तुम शादी करना चाहती हो।"

जवाब में आशा खिलखिला कर हंसने लगी, "पापा, जब कोई लड़का मेरी नजर में आयेगा तो जरूर लेकर आऊंगी।"

"तो क्या?" अवधेश आशा की ओर प्रश्नवाचक दृष्टि से ताकने लगे।

"हां, आप ठीक समझ रहे हैं। डॉक्टर ने कहा था कि आपका आपरेशन तत्काल जरूरी है और आप तैयार नहीं थे इसलिए मुझे ऐसा कहना पड़ा।" आशा अब भी खिलखिला रही थी।

उसका जवाब सुनकर अवधेश मुस्कुराने लगे। मगर वे यह सोचकर भावुक हो गये थे कि आशा ने बड़ी चतुराई से उन्हें इस संकट से उबार लिया था।

प्रवचन

भंवरजाल बगुजाल है

(परम पूज्य गुरुदेव श्री अभिलाष साहेब जी द्वारा कबीर संस्थान, इलाहाबाद में ध्यान शिविर के अवसर पर दिनांक को दिया गया प्रवचन।—प्रस्तुति श्री रामकेश्वर जी)

पूजनीय संत समाज, प्रिय सज्जनो तथा देवियो! सद्गुरु कबीर ने कहा है—

भंवर जाल बगुजाल है, बूड़े बहुत अचेत।
कहहिं कबीर ते बाँचिहैं, जाके हृदय विवेक

एक बगुजाल है और एक भंवरजाल है जिनमें बहुत-से अचेत लोग फंसे हैं। उनसे तो वही बचेगा जिसके हृदय में विवेक होगा। कहीं-कहीं पानी में भंवर होता है जिससे वहां का पानी चक्करदार घूमता रहता है। अगर उसमें कोई प्राणी या पदार्थ पड़ जाये तो वह उसी में घूम-घूमकर डूबता रहता है। उसी को भंवर जाल कहते हैं।

दूसरा बगुजाल है। बगु बगुला को कहते हैं। जलाशयों के निकट आप देखे होंगे बगुला बैठा रहता है। कभी-कभी वह एक पैर उठा लेता है और एक पैर पर खड़ा रहता है। मालूम होता है कि बहुत बड़ा तपस्वी है। वह अर्धउन्मीलित नेत्र हो जाता है अर्थात अपनी आंख को आधी खुली कर लेता है। उसको देखकर ऐसा मालूम होता है कि कोई योगी ध्यान कर रहा है लेकिन उसका ध्यान मछली और कीड़े पर होता है। जैसे ही कोई मछली या जलकीट उसकी पहुंच के भीतर आ जाता है, वैसे ही बड़ी तेजी से झपट्टा मारकर उसे वह गपक जाता है। इसी को साहेब बगुजाल कहते हैं। धर्म के परदे में रहकर लोगों को धोखा देना बगुजाल का लाक्षणिक अर्थ है।

भंवरजाल मोह-माया का जाल है और बगुजाल पाखण्ड का। इन्हीं दो जालों में दुनिया के लोग उलझें हैं। उनमें बहुत-से अचेत लोग डूब गये। कबीर साहेब कहते हैं कि इनसे तो वही बचेगा जिसके हृदय में विवेक होगा। भंवरजाल, बगुजाल और विवेक इन पर हम कुछ विचार करें।

स्थूल प्राणी-पदार्थों के मोह का जाल भंवरजाल है। आदमी अपने में स्ववश नहीं रह पाता है इसलिए सुख की कामना करता है। दूसरे की देहो से सुख की कामना करता है और पहली फंसान यही होती है। एक युवती युवक के शरीर से सुख चाहती है लेकिन वह विचार नहीं करती है कि यदि युवक के शरीर में सुख होता तो वह अपने शरीर के सुख को लेकर सुखी होता। वह युवक किसी युवती के शरीर से सुख चाहता है। वह भी विचार नहीं करता है कि यदि युवती के शरीर में सुख होता तो युवती अपने शरीर के सुख को लेकर सुखी रहती। इसलिए दोनों को सुख का भ्रम है। युवक युवती के शरीर में और युवती युवक के शरीर में सुख की कल्पना करते हैं और इस सुख की कल्पना में अपने को वे उलझा लेते हैं। वे दोनों जब मिलते हैं तब दोनों में एक उत्तेजना होती है। उस उत्तेजना से अपनी ही इन्द्रिय विह्वल और क्षीण होकर सुख की कल्पना की जाती है। उसमें मिलता तो कुछ नहीं है, केवल अपना भ्रम होता है।

कुत्ता जब सूखी हड्डी चबाता है तो हड्डी उसकी मूर्धा को घायल कर देती है जिससे उसकी अपनी ही मूर्धा से यानी जबड़े से गरम रक्त निकलता है लेकिन वह मूर्ख समझता है वह रक्त हड्डी में से आ रहा है इसलिए उसको वह चाबता रहता है। ऐसे ही स्त्री और पुरुष अपनी ही शक्ति क्षीण करते हैं और समझते हैं कि एक दूसरे से सुख आ रहा है। यही महाभ्रम है।

इसी कामभोग को दुनिया का सबसे बड़ा सुख माना है और यही दुनिया के सब दुखों की जड़ है। इसी के बाद बन्धनों की ऐसी लम्बी शृंखला चल निकलती है कि उससे जीवन भर छुटकारा नहीं हो पाता है। इसी कामभोग में उलझकर जीवनभर दुख और ताप होता है। इस चीज को समझना बहुत बड़ी बात है। जो लोग इतनी हिम्मत नहीं रख सकते कि जीवनभर असंग होकर रहा जाये, उन्हें विवाह करके रहना उचित है क्योंकि विवाह यदि नहीं करेंगे तो वे ठीक से रह नहीं पायेंगे और समाज में मर्यादा भंग होगी। इसलिए विवाह कर लिया तो उचित है लेकिन विवाह करके एक-दो बार

देख लिया। अब तो अकल आ जानी चाहिए कि इसमें सुख क्या है। इसी में डूबे-डूबे पूरा समय बिता देना समझदारी नहीं है।

गृहस्थ को एक-दो संतान के लिए ही इस कामभोग में उतरना चाहिए और आज तो दो भी नहीं, किंतु एक ही कहना चाहिए। चीन में एक ही का नियम है।

हमारे यहां लड़की का मूल्य कम है जबकि लड़के की अपेक्षा लड़कियां ज्यादा सेवापरायण और समर्पित होती हैं। लड़की हो या लड़का, एक ही हो तो बहुत बढ़िया है। बाकी तो आदत है, मन की मलिनता है, उद्वेग है, व्यर्थ में अपने शरीर तथा मन को क्षीण करके दुर्बल बनाना है और एक अध्यास को पुष्ट करना है। जो मन दुनियादारी और आसक्ति में डूबा रहेगा वह अध्यात्म और आत्मचिंतन में कैसे लगेगा। आदमी का मन जितना विषयासक्त होगा उतना राम से दूर होगा। काम और राम में फरक है।

कठोपनिषद् में यमाचार्य ने नचिकेता को समझाते हुए कहा है कि श्रेय मार्ग और प्रेय मार्ग दोनों साथ-साथ नहीं हैं। दोनों एक दूसरे की विपरीत दिशा में चलते हैं। प्रेय मार्ग फिसलन का, विषयवासना का मार्ग है और बहुत प्यारा लगता है लेकिन वह कंटकाकीर्ण है। श्रेय मार्ग विषयनिवृत्ति का मार्ग है। वह सूखा-सूखा और रूखा-रूखा लगता है लेकिन वही सुखद है। बीड़ी पीनेवाला आदमी बीड़ी पीये बिना रह नहीं पाता है। वह बीड़ी के बिना रह लेना असम्भव मानता है लेकिन जो बीड़ी नहीं पीता है वह बीड़ी के बिना भी बड़े प्रेम से रहता है। कामवासना भी इसी तरह है। यद्यपि यह बीड़ी से हटकर है। इसीलिए मनोवैज्ञानिकों ने उसे मौलिक प्रवृत्ति मान लिया है जो गलत है। मनोवैज्ञानिक मानते हैं कि जैसे भूख और प्यास जीवन में आवश्यक हैं वैसे ही कामभोग भी आवश्यक है। भूख, प्यास, नींद और कामभोग को उन लोगों ने मौलिक प्रवृत्ति मान लिया है। भूख-प्यास और नींद मौलिक प्रवृत्ति तो है लेकिन कामभोग मौलिक प्रवृत्ति नहीं है। खाये बिना कोई जीवित नहीं रह सकता। पानी पीये बिना भी कोई जीवित रह नहीं सकता। सोये बिना भी कोई रह नहीं सकता। न सोये तो वह पागल हो जायेगा। इसलिए खाना, पीना और सोना मौलिक प्रवृत्ति है लेकिन कामभोग मौलिक प्रवृत्ति नहीं है। वह विकारात्मक और वासनात्मक है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है कि छुटपन से ही कितने बच्चे ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं और वृद्धावस्था तक वे पहुंच जाते हैं लेकिन पूरा जीवन ब्रह्मचर्य व्रत से रहते हैं। जिस प्रकार भोजन-पानी और नींद का त्याग असम्भव है उसी प्रकार अगर काम भोग भी मौलिक प्रवृत्ति होता तो उसका त्याग असम्भव होता। इसलिए भोजन, पानी और नींद तो मौलिक प्रवृत्ति हैं लेकिन कामभोग मौलिक प्रवृत्ति नहीं है क्योंकि हम चाहें तो कामभोग का त्याग जीवन भर के लिए कर सकते हैं।

यह समझ लेना चाहिए कि एक-दो संतान के लिए गृहस्थों को स्थूल कामभोग में पड़ना ठीक है। इसके आगे के लिए बिलकुल जरूरत नहीं है। "आत्मा वै जायते पुत्रः"—यह पंडितों ने कहा। अपना आत्मा ही पुत्र बनकर आ गया इसलिए पत्नी अब मां हो गयी। यह बड़ा कठिन वचन है, बड़ी कठोर बात है। जब पुत्र पैदा हो गया तब पुरुष मानो खुद अपनी पत्नी में जाकर पुत्र रूप में पैदा हो गया। इसलिए पत्नी मां हो गयी। इसलिए अब संयम से रहो। यह कितना कठिन वचन है।

ऐसे-ऐसे ऋषि हुए हैं, जो ऐसे-ऐसे कड़े उपदेश किये हैं। इसलिए अपने मन को संयमित करने की जरूरत है। जितनी मोह-माया हम बढ़ायेंगे उतनी तकलीफ हमें होगी। गृहस्थ और विरक्त सबको अपनी-अपनी श्रेणी में मर्यादित रहने की जरूरत है। कितने लोग देखा-देखी माया-मोह बढ़ाते रहते हैं। दूसरे के घर में ऐसी चीजें हैं और अपने घर में उसको लेने के लिए अगर पैसे नहीं है तो कर्ज लेकर उस वस्तु को ले आते हैं और अपना ड्राइंगरूम सजाते हैं। कर्ज लेकर विवाह-शादी में खूब खर्च करते हैं लेकिन यह सब अज्ञान है। अपने को जितना समेट कर रहोगे उतना सुखी रहोगे और अपने को जितना फैलाओगे उतना दुखी रहोगे।

इस संसार में प्राणी-पदार्थों का सम्बन्ध जितना बढ़ेगा उद्वेग के स्थान भी उतना ही बढ़ेंगे। इसलिए जितना बन सके, अपने को समेटने की चेष्टा होनी चाहिए। जो कल्याण चाहे, उसे चाहिए कि वह मोह-माया में जो अपना मन फैलाया है उसको उसमें से समेटे। माया-मोह का जितना पसारा है, भंवरजाल है।

लोग मिलते हैं, बातें होती हैं। मैं उनसे कुशल-मंगल पूछता हूं तो कहते हैं महाराज, क्या करूं! एक

हाथ जोड़ता हूं तो चार हाथ टूटता है। यही संसार का स्वभाव है। यहां कुछ स्थिर नहीं है। यहां बनना-बिगड़ना स्वाभाविक है। हम बनाने की चेष्टा करते हैं लेकिन बिगड़ता चला जाता है। यदि आदमी अपने जीवनरूपी किताब का अध्ययन करे तो उसी से पता लग जायेगा कि बचपन से आजतक उसका जो अनुभव रहा है उसमें कितना बदलाव आ गया है। आदमी कितना भ्रम में जीता है।

आदमी जब किशोर था तबकी सोच, जब जवान था तबकी सोच, उसके वैवाहिक दिनों की सोच, जब उसके बाल-बच्चे पैदा हुए तब की सोच, बाल-बच्चे जब जवान हो गये तब की सोच कितनी विविधतापूर्ण होती है। जब वे खुद बच्चे थे तब की और जब वे खुद बाल-बच्चेवाले हो गये तब की स्थिति में कितना अंतर होता जाता है। वह जितना-जितना भ्रम पाले रहता है सब भ्रम टूटता चला जाता है। उसके भ्रम का एक-एक तार टूटता है लेकिन इसको समझना सरल नहीं है। ''सौ-सौ जूता खाय तमाशा घुस के देखै''—लोग सौ-सौ जूते भले खा जायें लेकिन घुसकर तमाशा देखते हैं।

कुत्ता किसी के घर में घुसकर हंडी में मुंह डालता है और घरवाला देखता है तो उसे डण्डा से मारता है। तब वह पें-पें करते भागता है लेकिन दूसरे घर में घुसकर फिर वह वही काम करता है। ''कुत्ते की मार अढ़ाई परग की''—यह भी कहावत कहते हैं। कुत्ता ढाई पग ही चला कि फिर दूसरे के घर में घुसेगा। आदत, मोह-माया की आसक्ति ही ऐसी हो जाती है कि जिसको बराबर देखते हैं कि यह दुखदाई है उसी को फिर-फिर करते हैं। यही भंवरजाल है। मन में विषयों और प्राणी-पदार्थों के प्रति जो आसक्ति है और उसमें उलझ-उलझकर जो मरना है यही भंवरजाल है। इसलिए अब से सावधान हो जाना चाहिए और अपने को संभालना चाहिए। अपने को संसार में जितना डुबाओगे उतनी ही तकलीफ होगी।

जल में कमलवत रहने का प्रयास करो। गृहस्थों के लिए यह बड़ी अच्छी बात है। वे जल में कमलवत रहने की चेष्टा करें। विरक्त तो कई बातों से, कई चक्कर से मुक्त हैं लेकिन जो चक्कर है उसमें जल में कमलवत रहना होगा।

संतों का आश्रम होता है और गृहस्थों का घर होता है। संतों के आश्रमों में आने का मतलब ही है वासना का त्याग करना। गृहस्थी के निर्माण का मूल है वासना और आश्रम के निर्माण का मूल है निर्वासना। आश्रम को चाहो तो विरक्तिमार्ग कह लो, बात एक ही है। गृहस्थी आरम्भ होती है विवाह से और विरक्ति आरम्भ होती है सब मोह छोड़कर गुरु के चरणों में समर्पित होने से। इसलिए गृहस्थी में वासना मूल है। सांसारिक वासना के कारण से विवाह होता है। यहां पर कोई आता है तो वासना का त्याग करके आता है और गुरु की शरण में समर्पित होता है। यहां निर्वासनिक सम्बन्ध है लेकिन गृहस्थी में वासनात्मक सम्बन्ध होता है। इसलिए दोनों में बहुत फरक है।

कितने ऐसे गृहस्थ हैं जो विवेक करके साधना में आगे बढ़ते जाते हैं और वे काफी साफ-सफाई कर लेते है। कितने ऐसे लोग हैं, जो पहले तो विरक्त हुए लेकिन पीछे भूल गये। चलिए, मान लिया जाये कि वे स्त्री-बच्चेवाले नहीं हैं लेकिन दुनियादारी में खूब उलझ गये। कितने ऐसे महंत हैं जो सरपंच और प्रधान हैं, एम. एल. ए. और एम. पी. भी हैं। आजकल स्वामी लोग मंत्री भी हो रहे हैं और कितनी स्वामिनियां भी हैं जो मंत्री हैं और गाली-गुप्ता में भी आगे हैं। वे सब कुछ करने वाली हैं। लगता है कि इन सब को अध्यात्म में रस नहीं आया इसलिए उनका जीवन नारद विवाह की भांति हास्यास्पद हो गया। नारद जी त्यागी थे लेकिन विवाह करने चले। साधु-संन्यासी साधना के लिए निकले लेकिन राजनीति करने लगे। इस प्रकार छोटे-बड़े ऐसे कितने साधु हैं जो जगत-प्रपंच में उलझे हैं।

एक साधु ने एकबार मुझे पत्र लिखा कि साहेब प्रधानी की सीट के लिए खड़ा हो गया हूं। भक्तों ने बड़ा जोर दिया तो मैं खड़ा हो गया। बहुत सीधे-सादे संत थे लेकिन अब उनको क्या कहा जाये।

राग रंग में दुनिया रीझै, चटक मटक में नारी।
भाव भक्ति में साधु रीझै, तीनों निपट अनारी

उनके भक्त लोग कोशिश किये तो वे रीझ गये और प्रधानी में खड़े हो गये। उन्होंने मुझे पत्र लिखा तो पत्र में सीधे तो नहीं लिखा था कि मैं प्रधानी लड़ने जा रहा हूं। ऐसा लिखा था कि अब आप भी यदि मुझे प्रधानी

लड़ने से रोकें तो भी मैं रुकूंगा नहीं, अब मैं लड़ूंगा।

उनका पत्र मैं पाया और पढ़ा तो मुझे बड़ी हंसी आयी और मैंने उनको उत्तर दिया कि मैं तुम्हें शाप देता हूं कि तुम हार जाओ और सचमुच में वे हार गये। मेरे शाप देने से नहीं हारे लेकिन हार गये। कुछ दिन बाद जब मैं उनसे मिला तो वे बहुत हंसे और कहे कि साहेब आपका शाप लग गया इसलिए मैं हार गया। अब मैं छुट्टी पा गया। तो साधु होकर भी कुछ लोग दुनिया में उलझे हैं और आगे भी उलझते ही चले जा रहे हैं। अरे, भाई, साधु का बहुत बड़ा काम है। वे अपने को स्ववश करें, अपने मन को निर्मल करें और समाज की सेवा करें। निर्मलता का प्रकाश करें। जो डाक्टर हैं, उनसे समाज की चिकित्सा-सेवा होती है, जो इंजीनियर हैं वे समाज की तकनीकी सेवा करते हैं। जो प्रोफेसर हैं, वे ज्ञान-विज्ञान की जानकारी देकर समाज की सेवा करते हैं। इस प्रकार अनेक कर्मचारी, संगीतज्ञ और राजनेता हैं जो अपने-अपने ढंग से समाज की सेवा करते हैं। कला-कौशल के अनेक विभाग हैं।उन सबके द्वारा समाज की सेवा होती है। उसी प्रकार साधु के द्वारा समाज की आध्यात्मिक सेवा होती है जो सबसे ऊंची है।

सबको अपने-अपने दायरे में रहकर समाज की सेवा करने की जरूरत है। अगर कोई वकील है और कामभर की वकालत उसकी चलती है तो उसको और कुछ करने की जरूरत नहीं है। वह वकालत करे और उसी में अपना जीवन निर्वाह करे। उसको अब डाक्टर होने की जरूरत नहीं है। कोई डाक्टर है और उसकी डाक्टरी मतलब भर की चलती है तो उसे वकील होने की कोई जरूरत नहीं है। कोई किसानी ठीक से कर लेता है और उसमें उसका गुजर-बसर हो जाता है तो उसको व्यापार करने की जरूरत नहीं है। कोई व्यापारी है और व्यापार से उसका काम चलता है तो उसको कोई जरूरत नहीं है कि वह किसानी करे। लेकिन किसान, व्यापारी, डाक्टर, मास्टर, वकील और दुनिया के जितने क्षेत्र हैं उन सब क्षेत्रों के मनुष्यों को आवश्यक है कि आध्यात्मिक उन्नति करें और इस काम में उनको सहयोग करने वाले साधु-संत ही होते हैं।

मन निर्मल हो, शांत हो, निर्वैर हो, निर्मान हो और बाहर से लौटकर अंतर्मुख हो, इसका उपदेश संत ही करते हैं। इसलिए संतों में यह गुण होने चाहिए कि वे स्वयं अंतर्मुख हों, निर्मान हों, वे स्वयं शीतल और राग-द्वेष हीन हों। जब वे ऐसा हों तब तो वे दूसरे को उपदेश दें और तब उसका फल हो। जब साधु लोग स्वयं ही उलझे रहेंगे तब दूसरे को क्या उपदेश देंगे और उस दशा में जो कुछ उपदेश वे देंगे भी उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा क्योंकि वह उपदेश तो बाजारू हो जायेगा। और बाजारू उपदेश से कुछ लाभ होता नहीं। जो मानसिक पीड़ा है वह तो उसके द्वारा दूर होती है जो स्वयं मानसिक पीड़ा से मुक्त है और ऐसा संत ही हो सकते हैं। इसलिए मानसिक पीड़ा को हरने वाले संत ही हैं लेकिन वे समझ ही नहीं पाये, भेष धर लिये और दुनिया में उलझ गये तो दूसरे का क्या कल्याण करेंगे।

भोजन मिल जाये, कपड़े मिल जाये और सोने की जगह मिल जाये तो इतना बहुत है। अब चकर-मकर में मत भूलो और दूसरे के ऐश्वर्य की अपने से तुलना करके मत उलझो। आपके पास जितना है उतना बहुत है। आपके पास पैसा ज्यादा है तो बड़ा मकान बना लो। कम है तो छोटा बना लो। और कम है तो और छोटा बना लो। और कम है तो फूस-फास की बना लो। यद्यपि फूस भी आजकल बहुत मंहगा है। कहने का मतलब है कि जिस स्थिति में हो उस स्थिति में प्रसन्न रहने की चेष्टा करो। दूसरे से तुलना करके हम उलझ जाते हैं। हम दूसरे का ड्राइंग रूम देखे, दूसरे की गाड़ी देखे, दूसरे का वैभव देखे तो ललचा जाते हैं। सबका प्रारब्ध-पुरुषार्थ अलग-अलग है। जिसका जैसा प्रारब्ध है और जिसका जैसा पुरुषार्थ है उसको वैसा मिलता है।

पुरुषार्थ का अर्थ है परिश्रम और प्रारब्ध का अर्थ है भाग्य। पुरुषार्थ का तो महत्त्व है ही भाग्य का भी अपना महत्त्व है। सभी लोगों में प्रतिभा का अंतर होता है, बुद्धि का अंतर होता है और कार्य-क्षमता का भी अंतर होता है। कितने लोग जो कुछ छू लेते हैं वही सोना हो जाता है। मतलब है हर जगह सफल हो जाते हैं। इसलिए भाग्य, तकदीर या कह लीजिए अदृश्य कुछ जरूर है लेकिन उसके बल पर सोओ मत, परिश्रमी रहो। परिश्रम और प्रारब्ध से जो मिले, उसमें संतोष करो और अपने को बचाने की चेष्टा करो। जंजाल जितना बढ़ाओगे उतना दुखी होओगे और उतना भंवरजाल में पड़ोगे।

बच्चे हैं तो उनकी सेवा कर दो। उनके लिए व्यवस्था कर दो लेकिन उनमें अपने को बहुत डुबाओ मत। किसी काम में अपने को डुबाओ मत बल्कि सबसे अपने को निकालकर रखो।

गृहस्थ और विरक्त दो श्रेणियां हैं। उसमें गृहस्थों का ही दायरा विशाल है। विरक्त तो थोड़े होते हैं क्योंकि सब तो विरक्त हो नहीं जायेंगे। और गृहस्थी कोई पाप की खानि या नरक का घर भी नहीं है। गृहस्थ तो सुधार के लिए ही हुआ जाता है। सुधार के लिए विवाह किया जाता है क्योंकि विवाह नहीं करेंगे तो गड़बड़ करेंगे और समाज विकृत होगा। इसलिए विवाह किया जाता है कि सुधार हो बिगाड़ न हो, विकृति न हो। यह सोचना चाहिए कि संयम बरतने के लिए विवाह किया जाता है। अगर सेवा, भक्ति में आदमी रहे तो यह सूझ होगी और उस सूझ से वह अपने को सुधारेगा।

गृहस्थ या विरक्त कोई भी हो, भंवरजाल सबके पास है। वह है मन का जाल। जो कुछ हम देखते, सुनते और भोगते हैं, उनके संस्कार हमारे चित्त में छपते रहते हैं। वही मनुष्य की पूंजी बनते हैं और उसी में उलझ-उलझ कर सारा संसार मर रहा है। मन के इस जाल को काटो। यही भंवरजाल है। ध्यान का अभ्यास इसीलिए कराया जाता है कि मन के जाल को काटने के आदती बनो।

साधना में कोई लगा है और आगे भी निरंतर लगा रहे तो धीरे-धीरे उसकी उन्नति होती चली जाती है। इसका मैं स्वयं अनुभव करता हूं। थोड़ी उम्र में मेरा मन कुछ और था, सत्तरह-अठारह वर्ष की उम्र में आते-आते उसमें कुछ और परिवर्तन हुआ, उसके आगे भी उसमें परिवर्तन होता गया और परिवर्तन होते-होते इतना परिवर्तन हुआ कि सोचकर सुखद आश्चर्य होता है। पहले का मन कहां-कहां नाचता था लेकिन अब उधर मन जाता ही नहीं है। यह सब एक दिन के प्रयास से थोड़े हुआ, धीरे-धीरे और दीर्घकाल तक करते-करते हुआ है। इसलिए किसी को हारना नहीं चाहिए। सबको लाभ होगा। जो जितनी मेहनत करेंगे, उतनी तीव्रता से लाभ होगा।

मन का भंवर सबको बहुत पीड़ित करता है। साथियों से या किसी से भी ऊंच-नीच थोड़ी बात हो गयी तो उसी को लेकर लोग रात-दिन पचते रहते हैं। उनको नींद नहीं आती है। जहां है वहां प्रतिक्रिया में पड़े रहते हैं। यही जहर है और यह जहर सबके अन्दर है। अमृत भी सबके अन्दर है लेकिन वह दबा है। जहर ऊपर है इसलिए वह झट से आ जाता है।

कोई कटु कह दिया, झूठ बोलकर बदनाम कर दिया या इसी प्रकार कुछ और कर दिया तो यह उसकी गंदगी है और यह उसी को तकलीफ देगी, आपको तकलीफ नहीं होगी। कुछ लोग मान भी लें कि आप बड़े घटिहा हैं तो माना करें। वे स्वयं पछतायेंगे। सोना तो सोना ही रहता है, वह माटी नहीं हो जाता। हीरा हीरा रहता है किसी के कह देने से कि यह हीरा नहीं माटी है, माटी थोड़े हो जायेगा, लेकिन मन अगर कमजोर है तो थोड़ी भी प्रतिकूलता पाया कि बस भंवर उसमें चलने लगा जिससे अब तनिक विश्राम उसको नहीं है। यही है मन का भंवर। विषय वासना, सांसारिकता में चिपकाहट, कैसे बाल-बच्चों की शादी होगी, कैसे सब चलेगा— इसी की चिंता हो जाती है। मैं कहता हूं कि भाई, चिंता मत करो, सब चलेगा। अनादिकाल से चल रहा है। संसार आटोमेटिक यंत्र है। यह चलता आ रहा है, हमारे सामने भी चल रहा है और आगे भी चलता रहेगा। हम और आप कौन होते हैं इसको चलाने वाले।

एक बैलगाड़ी जा रही थी। उसके सामने एक चुहिया भी जा रही थी। चुहिया को यह भ्रम हुआ कि यह बैलगाड़ी जो मेरे पीछे आ रही है इसको मैं ही खींच रही हूं। उसे इसका घमण्ड हो गया। वह सोची कि यदि मैं न खींचूं तो यह बैलगाड़ी नहीं चलेगी। अच्छा, मैं थोड़ा बायें मुड़कर देखूं कि यह गाड़ी बायें आती है कि नहीं। वह बायें मुड़ी लेकिन गाड़ी बायें नहीं मुड़ी, आगे निकल गयी। तब उसको लगा कि मैं नहीं खींच रही थी। ऐसी ही दशा हम लोगों की है। हम लोग मानते हैं हम ही खींच रहे है, हम ही चला रहे हैं। अरे, तुम दूसरे को क्या चला रहे हो। तुम अपने को चलाओ। संसार तो अनादिकाल से चल ही रहा है। आप नहीं रहेंगे तो भी सब चलेगा। आपके जो लड़के हैं वे बड़े चतुर हैं। वे सब व्यवस्था कर लेंगे। आप भंवरजाल में पड़कर दुख मत भोगो। भंवरजाल मोह का जाल है।

-क्रमशः